जय अमरनाथ

यशपाल जैन

सस्ता साहित्य-प्रकाशन

जय अमरनाथ !

[अमरनाथ की यात्रा का सचित्र रोचक वर्णन]

यशपाल जैन
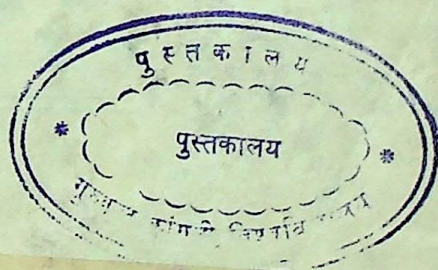
१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

पहली बार : १९५५

मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से हमारा देश बहुत ही समृद्ध है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में हिन्दमहासागर तक और पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरबसागर तक, सैकड़ों ऐसे स्थल विद्यमान हैं, जिन्हें देखने के लिए देश के कोने-कोने से असंख्य लोग आते हैं। हिमालय के सौंदर्य का तो कहना ही क्या ! उसके दर्शन के लिए तो दुनिया भर के प्रकृति-प्रेमी पर्यटक हजारों मील की यात्रा करके आते हैं।

पाठक जानते हैं कि हिमालय में काश्मीर का अपना स्थान है। उसका सौंदर्य जगद्विख्यात है। वहां के पर्वत, वहां की वनश्री, वहां की झीलें, वहां के प्रपात और वहां का स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु, जाने कहां-कहां से खींच कर यात्रियों को वहां ले आते हैं। उसकी इस अतुलनीय और अनन्त प्राकृतिक सुषमा को देखकर ही किसी प्राचीन कवि ने कहा था कि अगर इस पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह काश्मीर में है।

विगत सितम्बर में लेखक ने काश्मीर-स्थित अमरनाथ की यात्रा की थी। इस यात्रा का प्रकृति-प्रेमियों के लिए तो महत्त्व है ही, धार्मिक दृष्टि से भी इसकी बड़ी मानता है। रास्ते की दुर्गमता तथा भयंकरता की चिन्ता न करके सैकड़ों-हजारों नर-नारी प्रतिवर्ष इस महान तीर्थ की यात्रा करते हैं और अमरनाथ के दर्शन कर जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं। प्रकृति-प्रेमियों को तो इतनी सामग्री मिलती है कि अन्यत्र शायद ही मिले। वहां के अद्‌भुत दृश्यों को देखकर कोई भी सजीव व्यक्ति मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता।

प्रस्तुत पुस्तक में अमरनाथ की यात्रा का बड़ा ही विशद और रोचक वर्णन है। यात्रियों की सुविधा के लिए इसमें यात्रा-विषयक प्रायः सभी आवश्यक जानकारी दे दी गई है। उसे पढ़कर यात्रा का चित्र आंखों के सामने घूम जाता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो हम स्वयं उस तीर्थ की यात्रा कर रहे हैं।

ऐसे महान् तीर्थ पर कोई भी सुन्दर एवं प्रामाणिक पुस्तक का उपलब्ध न होना वास्तव में बड़े विस्मय की बात थी। हर्ष है कि इस पुस्तक द्वारा उस अभाव की पूर्ति हो रही है। सामग्री के साथ-साथ छपाई-सफाई की ओर भी विशेष ध्यान रक्खा गया है और पुस्तक की उयोगिता बढ़ाने के लिए लगभग ढाई दर्जन चुने हुए बढ़िया चित्र भी दिये गये हैं।

हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर बहुत से पाठकों को अमरनाथ जाने की प्रेरणा मिलेगी। इतना ही नहीं, जाने से पूर्व ही उन्हें यात्रा का आनन्द और तीर्थ-दर्शन का लाभ मिल जायगा।

पुस्तक अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे और कम पढ़े-लिखे लोग भी इससे फायदा उठा सकें, इस विचार से इसे मोटे टाइप में छापा गया है और इसका मूल्य भी कम रक्खा गया है।

—मंत्री

दो शब्द

अमरनाथ का नाम बहुत दिनों से सुन रखा था ; पर साथ ही यह भी पता चला था कि वहां की यात्रा बड़ी कठिन है और साल के कुछ ही दिनों में होती है। जब हम श्रीनगर पहुंचे और वहां की यात्रा का विचार हुआ तो मैंने सोचा कि अमरनाथ-संबंधी जो भी साहित्य उपलब्ध हो, देख लेना चाहिए। सबसे पहले विजिटर्स ब्यूरो पहुंचा । वहां डाइरेक्टर महोदय के दफ्तर में जाकर पूछा तो पता चला कि अमरनाथ पर कोई भी स्वतंत्र पुस्तक नहीं निकली है। उन्होंने दो-तीन फोल्डर दिये, जिनमें से एक में अमरनाथ का मामूली-सा वर्णन था । भारत सरकार के टूरिस्ट इंफार्मेशन आफिस गया, वहां भी कुछ न मिला। बड़ा आश्चर्य हुआ। जिस स्थान की यात्रा के लिए देश के कोने-कोने से हजारों नर-नारी आते हैं और सैकड़ों विदेशी पर्यटक जिसे देखकर हैरत में रह जाते हैं, उसके बारे में कोई साहित्य नहीं !

ब्यूरो से लौटकर बाजार में चक्कर लगाया । किताबों की सारी दुकानें देख डालीं ; लेकिन अमरनाथ पर कोई भी स्वतन्त्र पुस्तक न मिली। काश्मीर पर कई पुस्तकें हिन्दी-अंग्रेजी में थीं, लेकिन उनमें अमरनाथ पर एक छोटा-सा अध्याय था । किसी-किसी में वह भी नहीं । किसी अन्य अध्याय के साथ उसका नाममात्र का वर्णन था । एक छोटी-सी पुस्तक अमरनाथ पर हिन्दी में मिली, लेकिन उसमें अमरनाथ के धार्मिक रूप को अधिक महत्व दिया गया था । वैसे भी वह बहुत पुराना प्रकाशन था । कागज, छपाई आदि सब असंतोष-जनक, चित्र केवल एक, वह भी अस्पष्ट ! दिल में बात बड़ी चुभी ।

ब्यूरो में अधिकारी महोदय से बात हुई थी। अमरनाथ-संबंधी साहित्य के अभाव पर खेद प्रकट करते हुए जब मैंने उनसे कहा कि मैं उस-पर एक पुस्तक लिखने का विचार कर रहा हूं तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ । उन्होंने कहा, "अवश्य लिखिये । हम लोगों को उससे बड़ा लाभ पहुंचेगा ।"

नेहरूजी ने अपने काश्मीर-प्रवास की स्मृतियों में लिखा है, "मुझे

काश्मीर का परिचय कराने वाली पुस्तकें नहीं मिल सकीं। काश्मीर के रास्तों के कुछ विवरण मिलते हैं, लेकिन वे इतने भद्दे और गंदे छपे हैं कि उन्हें देखने को भी जी नहीं करता। इस वक्त भी शायद वही किताबें चलती हैं, जो एक पीढ़ी पहले की लिखी हुई हैं। भ्रमणार्थी विभाग को सबसे पहले घाटियों के ऊपर या इधर-उधर आने-जाने के रास्तों के बारे में पूरी जानकारी देने वाली सस्ती पुस्तकें निकालनी चाहिएँ।"

अमरनाथ जाने से पहले यात्रा का पूरा चित्र मन में नहीं था। जो भी थोड़ा बहुत साहित्य मिला था, उसे पढ़कर अनुमान हुआ था कि रास्ता बड़ा कठिन है, पर सुन्दर भी कम नहीं है। लेकिन जब वहां की यात्रा की और सारी चीजों को स्वयं देखा तो आंखें खुल गईं। पढ़े वर्णन बहुत फीके और अपूर्ण लगे। पुस्तक लिखने का विचार और मजबूत हुआ।

लौटते हुए रास्ते में जब मैंने साथियों से इस विषय में चर्चा की तो उन्होंने उसका उत्साह-पूर्वक स्वागत किया।

काश्मीर-प्रवास से दिल्ली लौटे तो बेहद थके थे और एक मास की अनुपस्थिति में काम भी बहुत इकट्ठा हो गया था। ध्यान उधर गया तो अमरनाथ की यात्रा की ताजगी मन से दूर-सी होने लगी। भाई विट्ठलदास मोदी के पत्र-पर-पत्र आ रहे थे कि सब काम छोड़कर पहले अमरनाथ वाली पुस्तक लिख डालिये। देर हो जायगी तो उसमें वह सजीवता नहीं आ पायगी, जो अब लिखने में आवेगी। इधर मेरी पत्नी का भी आग्रह रोज होता था। यात्रा में मैंने बहुत से चित्र लिये थे। उन्हें जब अपने मित्रों और संबंधियों को दिखाता तो यात्रा की स्मृति सहज ताजी हो जाती और वहां के सारे दृश्य आंखों के आगे घूम जाते। यात्रा करते समय मन में परिस्थितिवश जैसी द्विविधा हुई थी, वैसी ही पुस्तक लिखने में हुई; पर जब संकल्प किया और लिखने बैठा तो पुस्तक पूरी हो गई। इसे लिखवाने का श्रेय भाई विट्ठलजी और मेरी पत्नी को है।

पीछे मुड़कर देखता हूं तो जो यात्रा उस समय बड़ी कठिन प्रतीत हुई

थी, आज वह बड़ी सजीव और आनन्दप्रद जान पड़ती है। कह नहीं सकता कि इन पृष्ठों में उसका वर्णन उतना सजीव और रोचक हो सका है या नहीं, पर अपनी ओर से मैंने प्रयत्न किया है कि जहां तक हो सके, पाठकों को हमारे आनन्द का कुछ अंश मिल जाय और वे घर-बैठे उस यात्रा की कुछ झांकियां ले लें। उपयोगिता की दृष्टि से पुस्तक में सभी आवश्यक जानकारियां दे दी गई हैं। कम पढ़े-लिखे यात्री इससे लाभ उठा सकें, इसलिए इसे मोटे टाइप में छापा जा रहा है। चित्र भी काफ़ी दिये गए हैं।

इन चित्रों में से अधिकांश मेरे स्वयं के लिये हुए हैं। कुछ भाई श्री० विनायकराव घोरपड़े के हैं और कुछ जम्मू और काश्मीर सरकार के सूचना-विभाग से मिले हैं। इसके लिए मैं इनका बहुत अनुगृहीत हूँ।

इसकी तैयारी में मुझे जिन व्यक्तियों तथा पुस्तकों से सहायता मिली है, उनका मैं हृदय से आभारी हूं। भाई विट्ठलजी, श्री जीतमलजी तथा श्री मार्तंडजी की प्रेरणा के लिए कुछ कहूं तो वह मात्र औपचारिक बात होगी। ये सब मेरे इतने निकट हैं कि कुछ कह कर मैं इनकी नाराजी का पात्र बनूंगा।

यदि इस पुस्तक को पढ़कर पाठकों को आनन्द आया और अमरनाथ की यात्री की प्रेरणा हुई तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

७/८, दरियागंज,
दिल्ली।
१ जून १९५५

यशपाल जैन

विषय-सूची

जय अमरनाथ !

: १ :

दिल्ली से श्रीनगर

गर फिरदौस बर रूए जमींअस्त ।
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त ॥

अगर जमीन पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं (काश्मीर में) है, यहीं है, यहीं है।

काश्मीर जाने की इच्छा बहुत दिनों से हो रही थी। उसके महान प्राकृतिक सौंदर्य, कला-कारीगरी तथा स्वास्थ्यप्रद जीवन के बारे में मुद्दत से पढ़ता और सुनता आया था और अब जबकि राजनैतिक उतार-चढ़ावों ने उसे दुनिया के नक्शे पर सामने ला दिया था तो स्वभावतः हमारी दिलचस्पी उसमें और बढ़ गई थी, लेकिन इच्छा होने और अनेक बार प्रयत्न करने पर भी जाने का सुयोग न मिला। पिछले साल तो परमिट तक आ गये थे, लेकिन ऐन मौके पर जाना रुक गया। इस वर्ष सोचा कि कुछ भी हो, वहां अवश्य जाना है, सो बिना अधिक सोचे तथा ठहरने आदि का खास प्रबंध किये ३ सितम्बर को चल पड़े। हमारी पार्टी में कुल ८ जने थे। हिन्दी साहित्य मंदिर, अजमेर के संचालक श्री जीतमलजी लूणिया; श्री मार्तण्डजी उपाध्याय; उनकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी; आरोग्य मंदिर, गोरखपुर के संचालक श्री विट्ठलदास मोदी; लेखक की पत्नी श्रीमती आदर्शकुमारी, पुत्री अन्नदा, चिरंजीव सुधीर और लेखक। रात को दिल्ली से काश्मीर मेल द्वारा पठान-

कोट को रवाना हुए। गाड़ी चली तो सामान जंचा कर आपस में बातें करने लगे। बहुत दिनों की इच्छा पूरी हो रही थी, इससे सबको बड़ी खुशी थी, लेकिन काश्मीर की यह पहली यात्रा होने के कारण बहुत-सी आशंकाएं भी मन में उठती थीं। पठानकोट सवेरे पहुंच जायंगे। फिर दो दिन बस का सफर करना होगा। किसी की तबीयत खराब हो गई तो ? श्रीनगर में कहां ठहरेंगे ? यात्रा में मार्गदर्शन कौन करेगा ? आदि-आदि बहुत-से प्रश्न मन में उठते थे, लेकिन उनका समाधान कौन करता ?

रात भर का सफर था। थोड़ी देर चर्चा कर-करा कर सो गये। सवेरे आंख खुली तो पठानकोट आने वाला था। पौने सात पर वहां पहुंचे। काश्मीर के लिए यही अन्तिम स्टेशन है। आगे कार या बस द्वारा जाना होता है। हवाई जहाज भी जाता है, पर जिन्हें काश्मीर की प्राकृतिक सुषमा के दर्शन करने हैं, उन्हें बस या कार से ही जाना चाहिए। समय अधिक अवश्य लगता है, पर यात्रा का असली आनंद इसी में आता है। पहले रेल जम्मू तक जाती थी, लेकिन भारत-विभाजन के बाद कुछ रास्ता पाकिस्तान में चले जाने के कारण अब पठानकोट तक ही रह गई है। पठानकोट काफी बड़ी जगह है। बस्ती घनी और फैली है। लम्बा-चौड़ा बाजार है, जिसमें सब चीजें मिल जाती हैं।

सामान तुलवाने, नहाने-धोने, नाश्ता करने आदि में करीब एक घंटा लग गया। ८-२० पर टूरिस्ट बस से रवाना हुए।

बस में, देश के अलग-अलग भागों के २१ मुसाफिर थे। एक गुजराती-परिवार मोम्बासा (अफ्रीका) से आया था। श्रीनगर तक २६७ मील का रास्ता था, जो हम लोगों को बस के द्वारा तय करना था।

११ मील पर लखनपुर आया। वह भारत और काश्मीर की सीमा पर है। वहां हम लोगों के परमिट देखे गये और सामान जांचा गया। कोई एक घंटा लगा। फिर आगे बढ़े।

जम्मू तक का रास्ता बहुत मामूली है। ऐसा लगता है, मानों किसी मैदानी प्रदेश में चल रहे हैं। न ऊंचे पहाड़, न जंगल। पठानकोट से जम्मू ६७ मील है। १२ बजे के लगभग पहुंचे। जम्मू काश्मीर का एक बड़ा नगर है। शीतकाल में काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से हटकर यहीं आ जाती है। उंचाई कुल १३०० फुट है। कई दर्शनीय स्थल हैं। रघुनाथजी का मंदिर बड़ा विशाल है। उसे देखकर और बाजार में एक चक्कर लगा कर आगे बढ़े।

अब मार्ग इतना सुन्दर था कि बिना देखे उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उंचाई ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, दृश्य एक-से-एक बढ़कर आते गये। संयोग से हमारी टोली में वयोवृद्ध से लेकर महिलाएं तथा बालक सब थे, पर ऐसा जान पड़ता था, मानो उत्साह ने आयु के अंतर पर आवरण डालकर सबको एक पंक्ति में खड़ा कर दिया। बात-बात पर हम लोग अट्टहास कर उठते थे और प्रत्येक सुन्दर दृश्य को देखकर आनन्द से उछल पड़ते थे।

४२ मील पर ऊधमपुर आया वह महत्वपूर्ण सैनिक केन्द्र है। शाम को चार बजे हम लोग कुद पहुंचे। उसकी उंचाई ५७०० फुट है। बड़ी सुन्दर जगह है। चीड़ और देवदार के घने जंगल हैं। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है।

रात हम लोगों ने कुद से कुछ आगे बटोत में बिताई। यह स्थान कुद से थोड़ी निचाई पर है। ठहरने के लिए डाक बंगला है। छोटी-सी बस्ती और बाजार भी है। अगले दिन सबेरे ही वहां से रवाना होकर ८ बजे रामबन पहुंचे। रास्ते की शोभा वर्णनातीत थी। पठानकोट से निकलते ही रावी नदी मिली थी, जम्मू से कई मील तक तवी साथ रही और बटोत के बाद चिनाब मिल गई। उछलती-कूदती, कल-कल निनाद करती वह बही जा रही थी। पर्वतों के योग से उस द्वारा

निर्मित प्राकृतिक दृश्य अद्भुत थे।

बनिहाल पहुंचे तो दोपहर हो चुका था। वहां भोजन किया, कुछ फल खरीदे और फिर आगे बढ़े। अब आगे चढ़ाई-ही-चढ़ाई थी। बनिहाल की सबसे ऊंची चोटी पीरपंचाल है, जो ८९८९ फुट है। कहते हैं, दुनिया का यह सबसे ऊंचा मार्ग है। सड़कों के पांच-पांच चक्कर यहां दिखाई देते हैं और मोटरें और आदमी ऊपर या नीचे खिलौने जैसे जान पड़ते हैं।

पीरपंचाल के इधर जम्मू घाटी है, उधर श्रीनगर घाटी। यहां वर्ष में कई महीने बर्फ जमी रहती है और रास्ता बन्द रहता है। बनिहाल के पास से ५ मील लम्बी सुरंग बनाने की योजना चल रही है। उसके पूरे हो जाने पर श्रीनगर का रास्ता बारहों महीने खुला रहेगा।

पीरपंचाल के उधर के दृश्य दूसरी ही तरह के हैं। शाली (धान) के खेत ऐसे लगते हैं, मानो किसी ने सीढ़ियां बना दी हों। आगे उतार-ही-उतार है।

रास्ते में एक ओर को थोड़ा-सा हटकर वेरीनाग आया। यह झेलम का उद्गम है। बड़ा सुन्दर स्थान है। बीच में एक कुण्ड है, जिसका जल एकदम नीला दिखाई देता है। पानी इतना साफ कि ५६ फुट की गहराई होते हुए भी तली साफ दिखाई देती थी। यहां अच्छा-खासा उद्यान है, जिसमें सेब और बगगूगोशे के बहुत से पेड़ हैं। अनेक रंगों के फूल और प्रपात इस स्थान को अनुपम सौंदर्य प्रदान करते हैं।

आगे गाजीगुण्ड आया। यहां से श्रीनगर तक मैदान-ही-मदान है। लगभग ५००० फुट की उंचाई पर इतना बड़ा मैदान कैसे बन गया, देखकर आश्चर्य होता है। सड़क के दोनों ओर सफेदे के पेड़ों की कतारें हैं, जो प्रहरी जैसी लगती हैं। पामपुर से आगे केसर की क्यारियां देखीं, लेकिन केसर का मौसम न होने के कारण वे खाली पड़ी थीं।

५ सितम्बर को तीसरे पहर लगभग ४ बजे श्रीनगर पहुंचे। बस के अड्डे पर ज्योंही गाड़ी रुकी कि होटल और हाउसबोटवालों ने घेर लिया। लगे शोर मचाने। हम लोगों ने उस ओर ध्यान नहीं दिया और अपना सामान संभालने लगे। हममें से एक साथी होटल और हाउसबोट देखने गये। ठहरने की व्यवस्था कहां की जाय, यह एक समस्या थी। जिनको सूचना दी थी, उनमें से कोई भी बस के अड्डे पर नहीं आया था, इससे चिन्ता हुई। आखिर काफी पशोपेश और भागदौड़ के बाद हम लोग गोगजीबाग में श्रीमती कृणा मेहता के यहां पहुंचे। इन वहन के पति मुजफ्फराबाद के गवर्नर थे और जब कबाइलियों का काश्मीर पर आक्रमण हुआ तो उसकी रक्षा करते हुए वह शहीद हो गये। कृष्णाबहन अब वहां वीमेंस रिलीफ़ केन्द्र का संचालन कर रही हैं। वह कई बार काशमीर आने का आग्रह कर चुकी थीं।

कृष्णाबहन के यहां सामान रखकर जान-में-जान आई। एक रात रेल में और दो दिन बस में गुजरे थे। इससे शरीर बड़ा थका-सा था। सामान व्यवस्थित रखकर खूब नहाये और जल-पान किया। नई जगह थी, मौसम सुहावना था। घूमने निकल पड़े।

श्रीनगर काश्मीर की राजधानी है। यहीं से लोग काश्मीर के विभिन्न दर्शनीय स्थानों की यात्रा करते हैं।

: २ :

यात्रा की योजना

रात को दस बजे तक खूब घूमे। शिकारे में बैठकर झेलम की सैर की, बाजार में घूमे, गांधी आश्रम के व्यवस्थापक श्री रामसुमेरभाई के यहां मिलने गये। वे कहीं बाहर गये हुए थे।

अतः मिले नहीं। काफी देर हो चुकी थी। ठिकाने पर लौटे और सो गये।

सबेरे उठे और जलपान किया तबतक रामसुमेरभाई आ गये। हम लोग मिलकर बैठे और आगे का कार्यक्रम बनाने लगे। रामसुमेरभाई ने कहा, "काश्मीर का सबसे सुन्दर स्थान अमरनाथ है। वहां जरूर जाना चाहिए। मेरी राय है कि सबसे पहले वहीं हो आइये। सर्दी बढ़ती जा रही है। आप लोग एक महीना देर करके आये हैं। थोड़ी सर्दी और बढ़ी तो अमरनाथ की यात्रा असंभव हो जायगी।"

कृष्णाबहन ने उनका अनुमोदन करते हुए कहा, "यह बात बिल्कुल सही है। यहां की और जो चीजें देखनी हैं, जैसे बाग-बगीचे, गुलमर्ग, खिलनमर्ग आदि वे आप लोग लौट कर भी देख सकते हैं। उनके लिए उतने समय और मेहनत की जरूरत नहीं है।"

रामसुमेरभाई ने मुस्कराकर कहा, "अमरनाथ हो आये और ये जगहें छूट भी गईं तो आप लोगों को मलाल नहीं होगा, आप लोग घाटे में नहीं रहेंगे। काश्मीर की सबसे आकर्षक और रोमांचकारी यात्रा अमरनाथ की है। मेरी सलाह है कि आप लोग वहां जरूर जायं और हो सके तो कल ही चले जायं।"

हम लोगों ने दर्शनीय स्थलों की सूची बनाई और सोचने लगे कि पहले आसपास के दो-चार स्थान देख लें तब अमरनाथ जायं या पहले अमरनाथ हो आवें। एक मन होता था कि थोड़ा रुक कर अमरनाथ जाना ठीक होगा, पर साथ ही ख्याल होता था कि थोड़ा रुके तो कहीं उस यात्रा से वंचित न रह जाना पड़े।

रामसुमेरभाई और कृष्णाबहन दोनों का आग्रह था कि पहले अमरनाथ जायं। रामसुमेरभाई ने यह भी बताया कि यात्रा बड़ी कठिन है, टट्टुओं पर बैठे-बैठे पीठ अकड़ जाती है, टांगें छिल जाती हैं, पर साथ ही उस यात्रा में जो आनन्द

आता है, वह काश्मीर के किसी भी दूसरे स्थान की यात्रा में नहीं आता।

काफी सोच-विचार के बाद हम लोगों ने उनकी बात मान ली। तय किया कि दो दिन श्रीनगर में आराम करके और वहां की जो चीजें देख सकें वे देखकर ८ तारीख की सुबह हम लोग पहलगाम को रवाना हो जायं।

श्रीनगर झेलम के किनारे बसा है। प्राकृतिक दृष्टि से बड़ा सुन्दर है। ऊंचे-ऊंचे पर्वत, घने वन, नाना रंग के फूल, चिनार के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष, सेब के बगीचे, स्वस्थ स्त्री-पुरुष और बच्चे, ये सब देखते ही बनते हैं। हाउसबोटें, डल झील तथा शालीमार, चश्माशाही, निशात आदि बगीचे वहां की विशेष शोभा हैं।

दो दिन हम लोग श्रीनगर में खूब घूमे। डल झील की अच्छी तरह सैर की, उसमें खिले कमल-वन देखे, बाग-बगीचों में घूमे, सात पुलों का शिकारे में बैठकर चक्कर लगाया, शहर में घूम कर पेपियरमेशी, लकड़ी, ऊन आदि का सामान देखा, वहां के रहन-सहन का अध्ययन किया, गरीबी देखी, पर डल झील और उसके नेहरू पार्क को देखकर दिल बाग-बाग हो गया। गर्मी इस कदर थी कि जी अकुलाता था और गंदगी को देखकर मन को बड़ी हैरानी होती थी। सात पुल देखते समय लगभग तीन-चौथाई शहर आंखों के आगे घूम गया था। झेलम के किनारे दोनों ओर खड़े काठ के मकान बड़े अच्छे लगे थे, लेकिन गरीबी और गंदगी उनसे साफ टपकती थी। आश्चर्य होता था कि कैसे इन्हीं मकानों में काश्मीर की अद्वितीय कला पोषण पाती है।

दो दिन यों ही निकल गये, मालूम भी नहीं पड़े। ८ तारीख को सुबह सबसे पहली बस से हमारी पार्टी पहलगाम के लिए रवाना हो गई।

: ३ :

पहलगाम में

श्रीनगर से हम लोग रवाना हुए तो ९॥ बज चुके थे। बस वाले से एक दिन पहले कह रक्खा था कि हमारे लिए आगे की सीटें रक्खें, लेकिन जबतक अड्डे पर पहुंचे तबतक कुछ यात्रियों ने आकर आगे की सीटें घेर ली थीं। बस-कम्पनी के मैनेजर से कहा-सुनी की, लेकिन कोई परिणाम न निकला। हार कर बीच की जो सीटें मिलीं, उन्हीं पर बैठ गये।

श्रीनगर में कई आदमियों और कम्पनियों की बसें चलती हैं, लेकिन सीटों पर नम्बर न होने के कारण जो पहले पहुँच जाता है वही आगे की सीटों पर जम जाता है। सीटें वैसे सभी एकसी हैं; लेकिन पीछे की सीटों पर धक्के अधिक लगते हैं और उन पर बैठने वालों को कभी-कभी चक्कर आ जाते हैं, जी भी मिचलाने लगता है। हम लोगों ने तो बिल्कुल आखिरी सीट पर पठानकोट से श्रीनगर तक की यात्रा की थी। कुछ भी नहीं हुआ। हाँ, धक्के तो अधिक लगते ही हैं। यात्रियों को चाहिए कि पहले ही से बस के छूटने का समय मालूम करलें और जल्दी-से-जल्दी वहाँ पहुंच जायं। दूसरे, जहां तक हो सके, सरकारी बस से जायं। वे अधिक सुविधाजनक होती हैं।

हम लोग प्राइवेट बस से रवाना हुए थे, जो बड़ी ही रद्दी थी। थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसका इंजन इतना गरम हो जाता था कि रोककर पानी डालना पड़ता था। कभी-कभी तो इतनी भाप निकलने लगती थी कि आग लग जाने का डर मालूम होता था।

१६ मील चल कर अवन्तीपुर आया। यहां राजा अवन्ती के नवीं शताब्दी के बनवाये मंदिरों के भग्नावशेष हैं। मंदिर के खम्भे बड़ी सुन्दर कारीगरी से युक्त हैं। बेल-बूटे देखने योग्य

हैं। मंदिरों के शिखर गिर गये हैं और अब केवल खंभे और दीवारें खड़ी हैं। इन मंदिरों की कुछ मूर्तियां श्रीनगर के अजायबघर में सुरक्षित हैं।

रास्ता सामान्य है। ऐसा लगता है, मानों किसी समतल भूमि पर चल रहे हों। ५५०० फुट की उंचाई का अनुमान ही नहीं होता। गर्मी काफी थी।

३९ मील पर मटन आया। जिस तरह भारत में गया का धार्मिक महत्त्व है, उसी भांति काश्मीर में मटन का है। यहां पर हिन्दू लोग पितरों का पिण्डदान, श्राद्ध आदि करते हैं। मटन मार्तण्ड का बिगड़ा रूप है, जिसका अर्थ है सूर्य। यह स्थान सूर्य के मंदिर और झरने के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। हम लोगों की बस जैसे ही वहां रुकी कि दर्जनों पंडों का एक साथ आक्रमण हो गया। उनके हाथ में लम्बी-लम्बी बहियां थीं और वे यात्रियों को घेर कर पूछते थे कि कहां से आये हैं। पण्डों के प्रान्त, जिले और शहर बंटे हैं। हमारी पार्टी के एक साथी के बाबा कभी वहां आये थे। उनके हस्ताक्षर देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

मार्तण्ड-मन्दिर का निर्माण रामादित्य ने पांचवीं शताब्दी में कराया था। स्थान सुन्दर है और यहां का जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक कहा जाता है। हम लोगों ने झरने में जल पिया, मंदिर के दर्शन किये और जैसे-तैसे पंडों से पीछा छुड़ा कर पहलगाम की ओर रवाना हुए।

कुछ आगे चलकर चढ़ाई-ही-चढ़ाई थी। दृश्य बड़े सुन्दर और रमणीक थे। हरियाली खूब थी और हमारे मनोरंजन को बढ़ावा देने के लिए झरने थे। २१ मील का यह रास्ता जरा-सी देर में पार हो गया। १२। बजे पहलगाम पहुंच गये।

वैसे अमरनाथ की यात्रा का प्रारम्भ, जैसा कि पाठक आगे चलकर देखेंगे, श्रीनगर से होता है; लेकिन असली यात्रा पहलगाम से ही शुरू होती है। बस वहीं तक जाती है और आगे का सफर

टट्टुओं पर या डांडी में किया जाता है। कुछ लोग पैदल भी जाते हैं, लेकिन बहुत कम।

श्रीनगर से रवाना होते समय रामसुमेरभाई ने पहलगाम के गांधी आश्रम के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री श्यामलालभाई के नाम एक पत्र दे दिया था। पहलगाम पहुंचकर हम लोगों ने सामान अड्डे पर रक्खा और विट्ठलजी और मैं गांधी-आश्रम की खोज में निकले। उस समय बादल घिरे थे और बूंदा-बांदी हो रही थी। खोजने पर गांधी आश्रम पास ही निकला।

श्यामलालभाई मिल गये। उन्होंने बड़ी आत्मीयता से हम लोगों को ठहरने के कई स्थान दिखाये और अन्त में काश्मीर खालसा होटल में, जो बाजार के एक नुक्कड़ पर था, एक कमरा तय करके हमारा सामान उसमें लगवा दिया।

पहलगाम छोटी-सी जगह है, लेकिन स्थान बड़ा मनोरम और स्वास्थ्यप्रद है। समुद्रतट से उंचाई ७२०० फुट है। लिदर-घाटी के मध्य में बसे होने के कारण उसकी शोभा का क्या कहना! लिदर नदी यहां तीन धाराओं में बंट गई है। इन धाराओं का कलकल निनाद बराबर सुनाई देता रहता है। ऊंची-ऊंची पर्वत-मालाएं, चीड़ आदि के गगन-चुम्बी वृक्ष, हिमाच्छादित गिरि-श्रृंग, आदि यात्री को मुग्धकर देते हैं। छोटा-सा बाजार है, जिसमें जरूरत की सब चीजें मिल जाती हैं। खाने-पीने के लिए कई ढाबे हैं, साग-सब्जी,फलों, गरम कपड़े, दवाइयों, फोटो वगैरा की कई दुकानें हैं। तारघर और डाकखाना है। चार-पांच अच्छे होटल हैं। सरकारी अस्पताल है, नदी के किनारे यात्रियों के लिए कुछ कोठरियां भी बनी हैं; लेकिन ठहरने के लिए सबसे आनन्ददायक चीज तम्बू हैं, जो बाजार से किराये पर मिल जाते हैं। जरा-सी देर में जहां चाहें लगवा सकते हैं। एक सप्ताह के पंदह-बीस रुपये देने पड़ते हैं। आठ आना रोज जमीन का सर-कार को देना पड़ता है और यदि बिजली चाहें तो वह भी पांच-

छः रुपये खर्च करने पर आसानी से मिल जाती है ।

खा-पीकर जरा सुस्ता कर घूमने निकले । बाजार देखा, नदी के किनारे सैर की और पहाड़ पर चढ़कर एक झरना देखने गये, जिसका जल बड़ा ही स्वास्थ्यप्रद माना जाता है । दिल्ली से चलते समय पता चला था कि हमारे मित्र श्री विष्णुहरि डालमिया सकुटुम्ब पहलगाम जा रहे हैं और हमसे पहले ही पहुंच जायंगे । डाकखाने से उनका अता-पता पूछ करके लौटे तो बाजार में उनसे भेंट हो गई । इलाहाबाद के ला जर्नल प्रेस के संचालक श्री मदनमोहन तायल भी सपरिवार मिले । पठानकोट से आते समय बस में कई यात्रियों से मित्रता हो गई थी । उनमें से कुछ बाजार में चहलकदमी करते मिले । शाम को जब जल-प्रपात देखने जा रहे थे तो ऊपर से कुछ लोगों को उतरते देखा । एक व्यक्ति बांह के सहारे एक बालक को उठाये तेजी से नीचे आ रहा था । रास्ता ऊबड़खाबड़ था, पर वह उस ओर से तनिक भी चिन्तित न था । एक बालक को नीचे पहुंचाया, फिर उसी तेजी से ऊपर गया और दूसरे को उसी तरह नीचे ले आया । उसके पीछे एक युवती छोटे बालक को गोद में लिये वैसी ही बेफिक्री से आ रही थी । उन्हें रोक कर हम लोगों ने बात की तो पता चला कि वह सारा कुनबा पिछले हफ्ते अमरनाथ की यात्रा करके लौटा है । युवती ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं तो इस गोद के बालक को लेकर गई थी ।" सुनकर अच्छा लगा और अमरनाथ की यात्रा का हमारा संकल्प और प्रबल हुआ ।

झरने के पास थोड़ी देर बैठकर हम लोग पहाड़ के ऊपर-ही-ऊपर के लम्बे रास्ते से उतरे । दाएं-बाएं ऊंचे-ऊंचे चीड़ के अनगिनत पेड़ खड़े थे और ऊपर से घाटी में बसे पहलगाम की बस्ती और लिदर की जल-धाराओं को देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानों कोई चित्र देख रहे हों ।

आगे बढ़ने पर एक बालक टट्टू के साथ मिला । उसे

रोककर हम लोगों ने बारी-बारी से टट्टू की सवारी की और अपने-अपने साहस की परीक्षा कर ली। विश्वास हो गया कि अमरनाथ की यात्रा में हम लोग डरपोक सवार नहीं साबित होंगे।

नदी का पुल पार करते समय दिल्ली की पार्टी फिर मिल गई। बातचीत में मालूम हुआ कि विष्णुजी सपरिवार १० तारीख को अमरनाथ की यात्रा का कार्यक्रम बना रहे हैं। हम लोगों ने भी निश्चय किया कि अगर कोई विशेष बात न हुई तो १० को ही चलने का ठीक रक्खें। एक और भी कारण था। १० सितम्बर को त्रयोदशी थी। हम लोगों ने सोचा कि दो रातें मार्ग में बिता कर भाद्रपद पूर्णिमा को अमरनाथ के दर्शन करेंगे तो अधिक अच्छा रहेगा।

अमरनाथ की गणना भारत के महान् तीर्थों में की जाती है। उसका इतना माहात्म्य है कि रास्ते की भयंकरता तथा मुसीबतों की चिंता न करके प्रतिबर्ष सहस्रों नर-नारी देश के कोने-कोने से वहां जाते हैं और शिव, पार्वती तथा गणेश की हिममूर्तियों के दर्शन कर जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं। यात्रियों में सभी मत-मतांतरों और धर्मों के लोग होते हैं और जब वे मिल कर वहां की यात्रा करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, मानों वे सब एक ही परिवार के सदस्य हों।

प्रकृति-प्रेमियों के लिए भी अमरनाथ का महत्त्व और आकर्षण कम नहीं है। रास्ते में ऐसे-ऐसे मनोहारी दृश्य मिलते हैं और स्वयं अमरनाथ का रूप इतना उदात्त एवं भव्य है कि उन्हें देख कर शुष्क-से-शुष्क व्यक्ति का भी हृदय आनंद से उछल पड़ता है। सच तो यह है कि बिना अमरनाथ की यात्रा के काश्मीर का प्रवास पूर्ण नहीं माना जा सकता। जबतक असह्य जाड़े तथा दुर्लंघ्य हिम के कारण वहां का रास्ता बंद नहीं हो जाता तबतक देश-विदेश के पर्यटकों तथा धर्मपरायण नर-नारियों का आवा-

गमन बना रहता है। आषाढ़ से क्वार तक वहां जाने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या ३५-४० प्रतिदिन के लगभग होती है। मेले की बात अलग है। उसमें तो हजारों यात्री सम्मिलित होते हैं।

अमरनाथ का रास्ता वैसे आषाढ़ से क्वार तक के चार महीनों में खुला रहता है, लेकिन यात्रा का सर्वोत्तम समय श्रावण अर्थात् अगस्त का पहला सप्ताह माना जाता है। उन दिनों बर्फ कम होती है, जाड़ा विशेष कष्टकर नहीं होता और सब से बड़ी बात यह है कि श्रावणी पूर्णिमा का चन्द्रमा ज्योंही अपनी आभा से भूतल को दिव्यता प्रदान करता है, गुफा की मूर्तियों के बड़े ही विलक्षण रूप में दर्शन होते हैं। कहते हैं, वैसे दर्शन यात्रियों को दूसरे दिनों में नहीं होते। मूर्तियों की बर्फ पिघलने लगती है और बाद में वे हिम का एक ढेर-मात्र रह जाती हैं।

: ४ :

मन की दुबिधा

घूमघाम कर रात को डेरे पर लौट आये, भोजन की व्यवस्था की और खा-पीकर बैठे कि इतने में एक पंडा महाराज आ गये। उन्होंने बताया कि वह दो-तीन दिन पहले ही अमरनाथ से लौटे हैं। उन्होंने वहां का कुछ ऐसा डरावना चित्र खींचा कि हम लोग सोच में पड़ गये। वह बोले, "अजी, रास्ता बड़ा भयानक है। ऊपर, सुना है कि कल पानी पड़ गया है। फिसलन के साथ-साथ जाड़ा बेहद हो गया होगा।"

हमने कहा, "और भी तो बहुत-से लोग जा रहे हैं।"

उन्होंने जवाब दिया, "देखिये, कितने पहुंचते हैं!"

फिर कुछ रुककर बोले, "बच्चों के साथ जाने की सलाह तो मैं हर्गिज नहीं दूंगा।"

और बहुत-सी बातें कह-कहा कर पंडाजी चले गये। उनके इस वर्णन से मन में एक दुविधा पैदा हो गई। श्रीनगर से चले थे तभी से सुधीर को कुछ-कुछ सर्दी हो रही थी। यहां उसने ठण्डे पानी में खूब हाथ दिया, झरने के पानी में खेला। नतीजा यह हुआ कि रात को सर्दी और बढ़ गई और उसका गला बैठ गया। पंडाजी जिस समय उठकर गये, हमारा ध्यान बार-बार सुधीर की ओर जाने लगा। यदि उसकी तबीयत और बिगड़ गई तो ? निमोनिया हो गया तो ? रास्ते में खूब सर्दी होगी, बरफ पर चलना पड़ेगा, आदि-आदि विचार मन में उठने लगे। आदर्श पहले तो चुप रही, फिर कहने लगी, "सुधीर को लेकर जाने की मेरी राय नहीं है। उसे अगर कुछ हो गया तो लोग हमें पागल कहेंगे।" जीतमलजी, जिन्हें हम सब प्रेम और आदर से 'मालक' कहते हैं, का मन भी डांवाडोल होने लगा। उन्होंने कहा, "मेरी तबीयत कुछ गिर-सी रही है ? मन में उत्साह नहीं है।" लक्ष्मीभाभी, विट्ठलजी और अन्नदा के मन में हिचक नहीं थी। सुधीर तो जुकाम से पीड़ित होने पर भी जाने के लिए रस्सी तुड़ाकर भागने को हो रहा था, पर मेरा और आदर्श का मन सुधीर के कारण कभी इधर तो कभी उधर होता था। यही चर्चा करते-करते हम लोग सो गये।

सबेरे उठे तो सुधीर का जुकाम जोरों पर था। रात को उसे थोड़ी हरारत भी हो गई थी, लेकिन अमरनाथ जाने के बारे में उसके उत्साह में कोई कमी नहीं आई थी। वह बार-बार अपनी मां से कहता था, "तुम भले ही रह जाना, मैं तो जरूर जाऊंगा।"

तैयारी के लिए आज का ही दिन बाकी रहा था। अगले दिन तो चल ही देना था, पर हम लोग कोई निर्णय नहीं कर पाते थे। आदर्श बार-बार कहती थी, "मैं सुधीर के पास रह जाऊंगी। तुम लोग चले जाओ।" मालक कहते थे कि रह जाय तो उसे मैं रख लूंगा।

यही स्थिति चलती रही। मन में अस्थिरता थी, लेकिन जाने के लिए तैयारी न करते तो जाने वालों के भी रह जाने का डर था। इसलिए श्यामलालभाई से कहा कि सामान वगैरा तो इकट्ठा कर ही लिया जाय। १०-११ बजे घूमने निकले तो मालूम हुआ कि बिड़ला-परिवार के श्री बसंतकुमार बिड़ला अपने दल के साथ अमरनाथ से लौट आये हैं। उनकी पार्टी के कुछ लोग भी मिले। उन्होंने बताया कि डरने की कोई बात नहीं है। पानी थोड़ा जरूर पड़ गया है, लेकिन रास्ता ठीक है। उस पार्टी के साथ काशीनाथ नाम के एक पंडा गये थे। वह भी मिले। उन्होंने कहा कि आप लोग जरूर जायं। रास्ता उतना बुरा नहीं है, जितना कि बताया जाता है।

श्रीनगर की अपेक्षा पहलगाम में सर्दी बहुत थी, लेकिन मौसम साफ था। आसमान में बादलों का नाम भी नहीं था, धूप निकली थी। इससे अनुमान हुआ कि ऊपर अब वर्षा की अधिक संभावना नहीं है।

दोपहर को सुधीर को एक केमिस्ट को दिखाने ले गया। उससे बात हो ही रही थी कि दुकान में एक सज्जन आये। केमिस्ट ने अंदाज से कहा कि वह डाक्टर मालूम होते हैं। पूछा तो उन्होंने कहा, "मैं डाक्टर नहीं हूं। आपकी ही तरह यात्री हूं, पर हमारी टोली में दो डाक्टर हैं। जरूरत हो तो बुलाऊं।" मेरे 'हां' कहने पर वह बाजार में घूमते हुए अपने डाक्टर मित्र को बुला लाये। उन्होंने सुधीर का गला देखा, छाती देखी और कहा कि चिंता की कोई बात नहीं है। ठीक है।

मैंने पूछा, "इसे इस हालत में अमरनाथ ले जायं?"

डाक्टर ने फौरन उत्तर दिया, "जरूर, भगवान पर भरोसा रक्खें। फिर हम लोग भी तो आपके साथ ही चल रहे हैं।"

इतना कहकर डाक्टर ने एक नुस्खा लिखकर दिया और कहा, "भगवान ने चाहा तो इस दवा से शाम तक बहुत-कुछ

आराम हो जायगा।"

इन बंगाली डाक्टर की बातों से हम लोगों को बड़ा दिलासा मिला, हिम्मत बंधी। डाक्टर दार्जिलिंग से आये थे और उनकी पार्टी भी अगले दिन अमरनाथ जा रही थी। बाजार में लोगों से चर्चा करने पर मालूम हुआ कि अगले दिन लगभग डेढ़ सौ आदमी यात्रा पर जा रहे हैं।

हम लोगों ने कई आदमियों से जाने के बारे मे पूछा। सब की अलग-अलग राय थी। कोई कहता था कि रास्ता बड़ा बीहड़ है और अब जाने का मौसम नहीं रहा। कोई कहता कि ऐसी कोई बात नहीं है। आखिर इतने आदमी जा ही रहे हैं। रास्ता बहुत खराब होता तो क्यों जाते ? कोई कहता कि बच्चों के साथ जाना मुनासिब नहीं होगा। लेकिन गांधी-आश्रम के श्यामलालभाई बराबर सबके जाने का आग्रह कर रहे थे। वह बात-बात में कहते, "बेफिक्र रहो।" उनके मुंह से कभी कोई निराशाजनक बात निकली हो, मुझे याद नहीं। उन्होंने कहा कि कपड़े साथ में काफी होने चाहिए, फिर कोई फिक्र की बात नहीं है। बच्चे भी मजे में जा सकते हैं।

अब एक समस्या यह खड़ी हुई कि अन्नदा और सुधीर को ले जाया जाय तो उनके गरम कपड़ों का पूरा-पूरा बन्दोबस्त होना चाहिए। दोनों के पास पूरी बांह के स्वेटर थे, कोट थे, लेकिन टांगों को ढकने के लिए पतलून या पाजामा जैसा कुछ नहीं था। श्यामलालभाई को मैंने यह कठिनाई बताई तो अपने स्वभाव के अनुसार उन्होंने फौरन कहा, "बेफिक्र रहिये। हम आश्रम के अपने टेलर-मास्टर से दोनों के लिए पतलून तैयार करवा देंगे। वक्त पर मिल जायंगी।" इतना कहकर उन्होंने पसन्द करने के लिए कई तरह की ट्वीडें सामने मेज पर निकालकर रख दीं। हमने सोचा कि बच्चे साथ जायं या न जायं, कपड़े सिल जायंगे तो काश्मीर की ठंड में काम आ जायंगे। दोनों की पतलूनों के

लिए दो अलग-अलग कपड़े पसन्द किये और टेलर-मास्टर को, जो आश्रम में ही बैठ कर सिलाई करते थे, सौंप दिये। मन में डर था कि कहीं कपड़ों को बिगाड़ न दें, पर उन्हें देने के सिवा और कोई चारा ही न था।

मन डांवाडोल था, फिर भी श्यामलालभाई की मदद से हम लोगों ने साथ में जाने वाले सामान की सूची तैयार की। विचार हुआ कि कुछ तो पूड़ियां और साग तैयार करालें और कुछ ऐसा सामान रहे कि जिससे मौका मिलने पर स्वयं खाना तैयार कर लिया जाय। ओढ़ने-बिछाने के लिए श्यामलालभाई ने आश्रम से कुछ नमदे और लोइयों का प्रबन्ध कर दिया। साग-भाजी, फल, स्टोव, लालटेन, पूजा की सामग्री, आटा, चावल, मिट्टी का तेल, स्प्रिरिट आदि-आदि चीजों की लम्बी सूची बन गई और श्यामलालभाई ने आश्वासन दिया कि रात तक वह सारी चीजें इकट्ठी कर देंगे और अंत में मुस्कराते हुए कह दिया, "आप लोग बेफिक्र रहें।"

दोपहर तक का समय योंही निकल गया। यद्यपि डाक्टर ने दिलजमई कर दी थी, फिर भी एक साथ इधर या उधर निश्चय नहीं होता था। सुधीर बार-बार कहता था कि म जरूर जाऊंगा। आदर्श कहती थी कि मैं सुधीर को ले जाने की हर्गिज सलाह नहीं दूंगी। मालक की सुस्ती चल रही थी। उनकी सलाह थी कि सुधीर को नहीं ले जाना चाहिए। विट्ठलजी कहते थे कि जरूर ले चलना चाहिए। लक्ष्मीभाभी चुपचाप सबकी बातें सुनती रहीं। अंत में उन्होंने बड़े उत्साह और विश्वास के साथ कहा, "इसमें इतना सोचने की क्या बात है? भगवान का नाम लो और ले चलो, मेरी जिम्मेदारी पर ले चलो। भगवान सब ठीक करेंगे।"

भाभी का इतना कहना था कि मन की दुबिधा दूर हो गई और एक साथ सबके चलने का निश्चय हो गया। बात असल में

यह थी कि इस महान यात्रा के लिए सभी लालायित थे और बहुत मजबूरी की हालत को छोड़कर रुकने की किसी की भी इच्छा नहीं थी। मन की दुबिधा दूर होते ही यात्रा की तैयारी उमंग से होने लगी।

: ५ :

तैयारी और प्रस्थान

श्री श्यामलालभाई सारा सामान इकट्ठा करने में लगे थे। उन्होंने सामान लेने में बराबर इस बात का ध्यान रक्खा कि भले ही कुछ ज्यादा हो जाय, पर कम कोई भी चीज न पड़ने पाये। व्यवस्था जब उनके हाथ में थी तो हमें सामान की कोताई के कारण किसी प्रकारकी असुविधा होना उनके लिए अच्छी बात नहीं है, यह सावधानी उनके मन में बराबर बनी थी। उन्होंने कुछ सामान खरीदा, कुछ किराये पर लिया, कुछ अपने यहां से दिया। रात को नौ-दस बजे तक बहुत थोड़ी चीजों को छोड़कर शेष सब सामान हमारे कमरे में आ गया। गांधी-आश्रम से सबने गरम मोजे खरीदे, विट्ठलजी और सुधीर ने सिर और कानों को ढकने वाले टोपे, अन्नदा ने मफलर और मालक और मार्तण्डजी ने सिर पर पहनने की गरम टोपियां लीं, जो खींचकर कानों तक आ जाती थीं। कंधों पर लटकाने वाले दो झोले सिलवाये। टेलर-मास्टर बच्चों की पतलूनें तैयार करने में जुटे थे।

शाम को हमारे पड़ौस के कमरे के लोग अमरनाथ से लौटे। हमें मालूम हुआ तो उनसे प्रश्नों की झड़ी लगादी। उन्होंने बताया कि यात्रा कठिन नहीं है। थोड़ा पानी जरूर पड़ गया था, लेकिन रास्ता साफ है। कोई डर नहीं है।

सारा सामान जुटाकर हम लोग रात को सोने को हुए तो

श्यामलालभाई आये। उन्होंने कहा कि सामान तो सब आ गया, लेकिन कल जाने वाले यात्री अधिक होने के कारण टट्टू महंगे मिले हैं, सवारी के कोई १७॥) फी टट्टू और लद्दू भी कुछ इसी हिसाब से। पहले अन्दाज था कि नौ-नौ, दस-दस रुपये में हो जायंगे। जो हो, अब सोचने का मौका न था। उसी समय काशीनाथ पंडा आये। उन्होंने बताया कि विष्णुजी की पार्टी ११बजे रवाना हो रही है और वे लोग चाहते हैं कि हम लोग भी साथ ही चलें। उन्होंने यह भी बताया कि वे लोग रात चंदनवाड़ी से आगे जोजपाल में बिताना चाहते हैं, जिससे १२ मील रास्ता पार हो जाय, अगले दिन के लिए कुल बारह मील चलने को रह जायं और फिर धीरे-धीरे शेष चार मील तय करके तीसरे दिन अमरनाथ पहुंचे, पूर्णिमा को। वैसे यात्रा दो ही दिन में हो जाती है और लोग दूसरे दिन ही अमरनाथ के दर्शन कर लेते हैं, लेकिन हम लोग मजे-मजे में यात्रा करें, ऐसी उनकी इच्छा थी।

हमें इसमें भला क्या आपत्ति हो सकती थी! हमने जोज-पाल में ठहरने की बात मान ली, लेकिन उनसे कह दिया कि हम कुछ जल्दी ही रवाना होकर पहले पड़ाव चंदनवाड़ी में मिल जायंगे।

सबेरे जल्दी उठे। निवृत्त हुए, नहाये-धोये, बिस्तर बांधे, सामान कुछ पेटी में रक्खा, कुछ बोरी में डाला। सुधीर रात को खूब सोया था। उसकी तबीयत अपेक्षाकृत ठीक लगी, फिर भी जुकाम साफ नहीं हुआ था। टेलर-मास्टर ने सारी रात जगकर दोनों की पतलूनें तैयार कर दी थीं। बच्चों ने पहनीं तो बिल्कुल ठीक बैठीं। सिलाई काफी अच्छी हुई थी।

खाने-पीने का कुछ सामान जो बाकी रह गया था बाजार से खरीदा और सब चीजों को जमाया।

कुछ यात्री बड़े तड़के निकल गये थे, कुछ जाने के लिए

तैयार खड़े थे। हम लोगों ने भी श्यामलालभाई से कहकर टट्टू मंगवाये। जिस समय सामान निकाल कर कमरे के बाहर बरामदे में रख रहे थे, देखते क्या हैं कि बाहर बड़ा शोर मच रहा है। बाहर जाकर देखा तो बड़ा विचित्र दृश्य सामने आया। एक अधेड़ उम्र के सज्जन रात की पोशाक पहने एक टट्टू की लगाम पकड़े अपनी ओर खींच रहे थे और उसी टट्टू की लगाम को पकड़कर श्यामलालभाई दूसरी ओर खींच रहे थे। दोनों बड़े तेज हो रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि झगड़े की जड़ टट्टू है। उन सज्जन का कहना था कि उन्होंने ५०) पेशगी देकर उस तथा अन्य टट्टुओं को अपनी पार्टी के लिए तय कर रक्खा है। श्यामलालभाई का कहना था कि ये टट्टू हमारे लिए हैं। विट्ठलजी और मैंने बीच में पड़कर मामला शांत करना चाहा, लेकिन बात सुलझी नहीं। तब यह तय हुआ कि टूरिस्ट ब्यूरो के अधिकारी के पास पहुंच कर रास्ता निकाला जाय। अधिकारी को बुलाया। वह आये और उन्होंने आते ही न कुछ पूछा, न जांचा और फैसला सुना दिया कि टट्टू उन सज्जन को दे दिये जायं। इस पर मार्तण्डजी को गुस्सा आ गया। उन्होंने उनसे कुछ सख्त-सुस्त कह दिया। सरकारी अधिकारी भला रैयत की गरमी कैसे सहन करते! वे दुगने गरम हुए, लेकिन किसी प्रकार हम लोगों ने उन्हें शांत किया। सारी बात जब उन अधिकारी महाशय को समझाई गई तब उनकी अक्ल में आया कि उनका फैसला जल्दी में हुआ था। फिर तो उन्होंने दोनों पार्टियों के लिए टट्टू का प्रबन्ध करने का आश्वासन दिया और हमारी पार्टी को श्यामलालभाई द्वारा तय किये गए टट्टू मिल गये।

सामान तयार था ही, टट्टू वाले अब उसे अपने हिसाब से बाँधने लगे। हमारे पास आठ सवारी के टट्टू थे और चार लद्दू। चूंकि जोजपाल में ठहरने के लिए कोई बनी-बनाई जगह न थी, केवल सपाट मैदान था, इसलिए सोचा कि एक तम्बू भी

साथ ले जाना चाहिए । अब समस्या सामने आई कि उसे ले जाने के लिए और टट्टू कहां से आवेगा ? लेकिन श्यामलालभाई ने अपनी चिरपरिचित मुस्कान के साथ कहा, "आप फ़िक न करें। बन्दोबस्त हो जायगा ।"

सामान लदते-लदाते १० बज गये । अब प्रतीक्षा थी तम्बू के टट्टू की । आधा घंटा और राह देखी । फिर भी समाचार न आया तो मार्तण्डजी और मैं पीछे रह गये, शेष पार्टी टट्टुओं पर सवार हो गई और भगवान का नाम लेकर विदा हुई।

पार्टी को विदा करके हम दोनों थोड़ा नाश्ता करने और समय काटने के लिए एक होटल में चले गये। नाश्ता शुरू ही किया था कि श्यामलाल भाई सामने से आते दिखाई दिये। उन्होंने बताया कि तम्बू का प्रबन्ध हो गया है और वह विष्णुजी की पार्टी के साथ रहेगा । चिंता दूर हुई और हम लोग भी अपने-अपने टट्टुओं पर सवार होकर चल दिये। हमारी इच्छा थी कि अमरनाथ की यात्रा से लौटने पर होटल के बजाय नदी के किनारे तम्बू में ठहरा जाय । अतः चलते-चलते हमने श्यामलाल-भाई से १३ सितम्बर को नदी के किनारे एक तम्बू लगवा रखने के लिए कहा । उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, "आप बेफिकर रहिये । लौटने पर सबकुछ तैयार मिलेगा। "

काफी यात्री अमरनाथ की यात्रा पर आज जा रहे थे । हमने हिसाब लगाया तो पता चला कि आज की यात्रा में देश के अनेक भागों का प्रतिनिधित्व हो गया था । गुजरात, बंगाल, मद्रास, दिल्ली, मालवा, राजस्थान, अजमेर, उत्तर प्रदेश, पंजाब, आदि भागों के लोग थे और इस प्रकार यह यात्री-दल अखिल भारतीय बन गया था।

उस दिन शुक्रवार था, भाद्रपद शुक्ल १३ । हम लोग रवाना हुए उस समय बादल सूर्य से इधर-उधर हो गये थे और चिलचिलाती धूप निकल आई थी । मन-ही-मन सूर्य-देवता को

प्रणाम किया और टट्टुओं पर सवार होकर चल दिये। कुछ टट्टू वाले सामान के साथ चले गये थे, कुछ सवारी के टट्टुओं के साथ। गुलाम नबी हम दो के टट्टुओं को संभालने के लिए रह गया था। वह हमारे साथ चला।

टट्टुओं के जमादार का नाम मुहम्मद रमजान था, जो हमारी टोली के साथ चला गया था। गुलामनबी ने बताया कि सब टट्टुओं के अलग-अलग नाम हैं। मार्तण्डजी के टट्टू का नाम गुलाबा था, मेरे का बुलबुल, आदर्श के टट्टू का नाम भी बुलबुल था, भाभी का बहादुर, मालक का कस्तूड़ा, अन्नदा का पवन, विट्ठलजी का गुरक और सुधीर का लालबहादुर। टट्टुओं पर सवार होते ही हम लोगों ने एड़ लगाई और जरा तेज चलाया कि शेष पार्टी को पकड़ लें, पर गुलामनबी ने कहा, "धीरे-धीरे चलाइये। अभी तो सारा सफर सामने है। भगाने से घोड़े थक जायंगे।"

: ६ :

वार्षिक यात्रा

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, अमरनाथ की वार्षिक यात्रा श्रावण मास, यानी अगस्त में होती है। भारत के विभिन्न भागों से लोग आ-आकर श्रीनगर के दशनामी अखाड़े पर इकट्ठे हो जाते हैं और श्रावण की अमावस्या के दिन यात्रा प्रारम्भ होती है। दूर-दूर के यात्री, साधु-महात्मा, भजनीक, उपदेशक सब मिलकर बड़े उत्साह से भजन-कीर्तन करते हैं, उपदेश होते हैं और चौथे दिन यात्री-दल वहां से चल पड़ता है। यात्रा के आगे-आगे भैरोंजी का पुजारी छड़ी लेकर चलता है। छड़ी दशनामी अखाड़े में रक्खी रहती है और इस विशेष अवसर पर काम आती है। वह महादेवजी के चिन्ह-स्वरूप होती है। कहते

हैं, इसकी पूजा काश्मीर सरकार की ओर से होती है। उस पर एक सौ ग्यारह रुपये और सोने का यज्ञोपवीत भेंट चढ़ाया जाता है। सारा यात्री-दल उत्साह और आनन्द से ओतप्रोत होता है। कभी वे भजन गाते हैं तो कभी शंकर, शंभु आदि के जयघोष करते हैं। दिन में लगभग आठ-दस मील चलकर पड़ाव पर ठहर जाते हैं, भोजन बनाते हैं, खाते-पीते हैं। पहलगाम तक भोजन और निवास का कोई कष्ट नहीं होता। ठहरने के लिए सुव्यवस्थित पड़ाव हैं, लेकिन पहलगाम के बाद अपना प्रबन्ध स्वयं करना पड़ता है। बहुत से यात्री मोटर-लारियों से पहलगाम पहुंच जाते हैं और वहां से दल में शामिल हो जाते हैं।

यात्रा श्रावण सुदी चौथ को श्रीनगर से चलकर रास्ते में ठहरती हुई षष्ठी को अनन्तनाग और सप्तमी को मटन पहुंचती है। अनन्तनाग पहाड़ की तलहटी में बसा है और काश्मीर में दूसरी श्रेणी का नगर है। मुसलमान इसे इसलामाबाद भी कहते हैं। यहां पर अनेक झरने हैं। काश्मीरी कला-कौशल का अच्छा काम होता है। यहां के प्रसिद्ध झरने का नाम 'मलखनाग' है। यहां पर दो कुण्ड हैं। एक कुण्ड के बीच में मंदिर दूसरे में शिवलिंग है। दोनों कुडों का पानी कारीगरी से युक्त एक पत्थर पर होकर प्रपात के रूप में कलकल निनाद करता हुआ गिरता है। एक ओर को गंधक का झरना है। श्रीनगर से यह स्थान ३६ मील है। सड़क अच्छी है। यहां आने के रास्ते में पामपुर, अवन्तीपुर, मटन आदि स्थान पड़ते हैं।

यात्रा एक दिन मटन में ठहर कर नवमी के दिन ऐशमुकाम पहुंचती है और दशमी को पहलगाम। पहलगाम से एक मील आगे उसके ठहरने का स्थान है। वहां से लोग टट्टुओं पर या डांडी में जाते हैं। यात्रा के समय बहुत से लोग पैदल भी जाते हैं। यहां से आगे का वर्णन हम आगे के अध्यायों में विस्तार से करेंगे। रास्ते में कई स्थानों पर पड़ाव डालते हुए यात्रा पूर्णिमा

को अमरनाथ पहुंचती है और वहां शिव, पार्वती और गणेश के दर्शन करती है। उस दिन शिवलिंग पूरे आकार में होता है और पार्वती और गणेश की मूर्तियां भी बड़ी भव्य दिखाई देती हैं। बाद में बर्फ पिघलने लगती है और यात्रियों का यद्यपि आना-जाना होता ही रहता है, तथापि उस रूप में उनके दर्शन नहीं होते, जिस रूप में पूर्णिमा को होते हैं।

यात्रा के समय कश्मीर राज्य की ओर से ठहरने, सुरक्षा, दवा-दारू आदि की व्यवस्था हो जाती है। यात्रा के साथ जाने में अपना आनन्द है। धार्मिक व्यक्तियों को उसी के साथ जाना चाहिए। खूब चहल-पहल, भजनकीर्तन, उपदेश आदि का लाभ सहज ही मिल जाता है। श्रद्धा-भक्ति में डूबे हजारों नर-नारियों में भगवान के दर्शन हो जाते हैं; लेकिन जिन्हें यात्रा का वास्तविक आनंद लेना है, उन्हें मेले से पहले या बाद में जाना चाहिए। मेले के समय एक तो गंदगी बहुत हो जाती है, दूसरे कोलाहल इतना अधिक होता है कि आदमी उसमें खो जाता है, स्वतन्त्र रूप से चिन्तन या प्रकृति का निरीक्षण नहीं कर सकता। सारा रास्ता इतना सुन्दर है, इतना भव्य है कि प्रकृति-प्रेमी को पग-पग पर बड़ी मूल्यवान् सामग्री प्राप्त होती है। प्रकृति की छटा को देखकर वह मुग्ध रह जाता है। प्रकृति के इस मनोहारी रूप की झांकी भीड़ में नहीं ली जा सकती।

यात्रा के समय पहलगाम में टट्टू, डांडी आदि सब मिल जाते हैं, लेकिन मांग अधिक होने के कारण महंगे मिलते हैं। सरकारी दर सवारी के टट्टू की फी टट्टू १७॥) और लद्दू की १५) रुपये है, डांडी ८५)।

खाने की व्यवस्था यात्रियों को स्वयं करनी होती है। चंदन-बाड़ी पर कुछ दुकानें हैं। उससे आगे कुछ भी नहीं मिलता।

: ७ :

पहला पड़ाव

अपने-अपने टट्टू पर सवार होकर हम आगे बढ़े तो कुछ ही कदम पर सड़क के किनारे एक तख्ती लगी मिली, जिस पर लिखा था :

पहलगाम	० मील
चंदनवाड़ी	८ मील
वायुजन	१६ मील
पंचतरणी	२४ मील
अमरनाथ की गुफा	२८ मील
पहलगाम	५७०० फुट

तख्ती पर सरसरी निगाह डालकर आग बढ़ चले। अपनी पार्टी के साथ मिल जाने की जल्दी जो थी। लगभग एक मील चलने पर पुराने पहलगाम गांव की थोड़े-से घरों की बस्ती मिली। वहीं लद्दू टट्टू और टोली के लोग खड़े थे। मालक का चेहरा खिला हुआ था। सुधीर की ओर से अब भी डर बना था, लेकिन अपने लालबहादुर को उसने सबसे आगे कर लिया था, जो अमरनाथ तक आने-जाने में बराबर आगे रहा। सबसे अधिक शैतान मार्तंडजी का टट्टू था। उसके बराबर जब कोई दूसरा टट्टू आ जाता तो वह कान खड़े करता और गर्दन टेढ़ी करके दांत निकालकर ऐसा मुंह मारता कि यदि दूसरा सवार सावधान न होता तो वह स्वयं या उसका टट्टू जरूर चोट खा जाता। गुलाबा की यह आदत अंत तक नहीं छूटी।

पहलगाम बड़ा सुन्दर है, लेकिन आगे का रास्ता देखकर हम लोग पहलगाम को भूल गये। पहलगाम से निकलते ही लिदर नदी साथ हो गई थी और जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गये,

उसका रूप निरंतर निखरता गया । ऐसे दृश्य प्राय: कम देखने में आते हैं । पहाड़ के वक्ष पर पतली सांपिन की तरह बल खाती पगडंडी जाती है । बांई ओर ऊंचे पर्वत, जिन पर हरियाली का नाम नहीं, दांई ओर तेजी से बहती हुई लिदर नदी, जिसके दोनों तटों पर ही नहीं, ऊपर उंचाई तक चीड़, बदलू, अखरोट, जाम, कंजिल, बुरिंग, ब्राड़ी, कुलमाछ आदि के हरे-भरे गगन-चुम्बी वृक्ष । पुराने पहलगाम के निकट सफेदे के पेड़ मिले थे, लेकिन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये, उनका स्थान दूसरे पेड़ लेते गये । बड़ा विचित्र दृश्य था । एक ओर देखो तो सपाट पहाड़, दूसरी ओर देखो तो विलक्षण हरियाली, पीछे देखो तो ऐसे दृश्य, मानो कोई चित्र देख रहे हों । बीच-बीच में मक्की के खेत ऐसे जान पड़ते थे जैसे किसी ने सीढ़ियां बना दी हों। वैसे काश्मीर का मुख्य भोजन चावल है और बनिहाल की घाटी से श्रीनगर तक शाली के लहलहाते खेत देख कर हृदय उछल पड़ा था, लेकिन यहां मक्की के खेत थे, जिनकी रखवाली के लिए यत्र-तत्र इक्की-दुक्की झोंपड़ियां पड़ी हुई थीं । आश्चर्य होता था कि उस निर्जन स्थान में चार-छः व्यक्ति किस प्रेरणा से अपने जीवन के लम्बे वर्ष बिता देते हैं । उनके छोटे-छोटे खिलौनों जैसे बच्चे यात्रियों को देखते ही दौड़े आते हैं और हाथ फैलाकर कहते हैं, "सेठ साब, पैसा दो।" उनकी प्यारी सूरत और स्वस्थ शरीर को देख कर जहां हर्ष होता है, वहां उनकी मांगने की वृत्ति पर क्षोभ भी होता है। इसमें दोष, वास्तव में, बच्चों का नहीं है, उन व्यक्तियों का है, जिन्होंने उन्हें पैसे दे-देकर भिखारी बना दिया है ।

हम लोगों के टट्टुओं को देख कर दो नन्हीं-नन्हीं बालिकाएं दौड़ी आईं और आदत के अनुसार उन्होंने हाथ फैला दिये । उनके चेहरे फूल-से खिले थे, सेब जैसे सुर्ख, लेकिन कपड़े निहायत गंदे । सिर के अग्र भाग में बालों की पतली-पतली इतनी वेणियां गुंथी थीं कि देखकर आश्चर्य होता था । पता नहीं, उनके तैयार करने में कितना समय लगता होगा । उनके शरीर के भीतरी

गंदे कपड़ों के ऊपर लम्बे चुगे जैसी फिरन थी, लेकिन वयस्क युवतियां अथवा बड़ी उम्र की महिलाओं जैसे आभूषण न थे। वे पैसे के लिए रट लगाए हुए थीं। हम लोग देर तक उनकी ओर देखते रहे, फिर मैंने कहा, "मांगो मत।" मन को बड़ा बुरा लगा। इतनी उंचाई पर प्रकृति के अलौकिक सौंदर्य के बीच, मानव का याचक रूप हृदय पर बड़ी चोट करता था। पैसे देने की जगह यदि यात्री इन बच्चों के लिए कोई ऐसी चीजें ले जायं तो अधिक अच्छा हो, जिनसे उनके ज्ञान में वृद्धि हो और उनका स्तर ऊंचा उठाने में सहायता मिले; लेकिन इतनी दूरदर्शिता कितनों में है ?

हम लोगों ने नदी का पहला काठ का पुल पार किया तो अच्छा लगा, लेकिन उससे कुछ आगे निकल कर जब हमारा संकीर्ण मार्ग ऊंचे-से-ऊंचा होता गया और कहीं-कहीं पर खतरे-भरे ढाल आगे लगे तो रोमांच के साथ-साथ भय भी उत्पन्न होने लगा। हम लोगों में से कई जने ऐसे थे, जिन्होंने कभी चार कदम भी घोड़े की सवारी पहले नहीं की थी, शायद एक-दो जनों ने विशेषकर बच्चों ने तो घोड़े की पीठ पर कभी पैर भी नहीं रक्खा था। इसलिए कभी-कभी विचार उठता था कि इतनी लम्बी यात्रा कर भी पायंगे या नहीं, लेकिन उत्साह सबमें अपार था। जब कोई नया प्राकृतिक दृश्य आता था या झरना पहाड़ की गोद में दूध की भांति बहता दीख पड़ता था तो हमारी पार्टी में से कोई-न-कोई चिल्लाकर सारी टोली का ध्यान उसकी ओर आकर्षित कर देता था।

नदी बीच में थोड़ी देर को बिछुड़ गई थी, फिर साथ हो गई और चंदनवाड़ी तक बराबर साथ गई। रास्ते में कहीं मिट्टी के पहाड़ पड़ते थे, जिन पर चलने में धूल उड़ती थी तो कहीं बड़े-बड़े पत्थर लांघने पड़ते थे और कहीं ऐसी सपाट चढ़ाई आती थी कि ढालू रास्ते पर टट्टुओं के पैर उखड़ जाने की आशंका

होती थी। मन बार-बार नई-नई परिस्थितियों और दृश्यों से गुजरता था और उसकी स्थिति बाहरी स्थितियों के अनुसार कभी कुछ, कभी कुछ होती थी।

चंदनवाड़ी पहलगाम से कुल आठ मील है। रास्ता सचमुच रोमांचकारी है। पहलगाम से प्राय: लोग यहां पिकनिक के लिए जाते हैं। जो अमरनाथ नहीं जा पाते, वे भी चंदनवाड़ी तक तो हो ही जाते हैं। रास्ते में हमें अनेक व्यक्ति वहां जाते हुए मिले। उनमें पुरुष, स्त्रियां, बच्चे सभी थे।

रास्ता इतना संकरा है कि दो घोड़े बिना खतरे के साथ नहीं जा सकते। कभी-कभी हमारे टट्टू एक-दूसरे से रगड़ जाते थे, तब नीचे की ओर देखकर हृदय कांप उठता था। वैसे मौत सब जगह ही रहती है, लेकिन वहां पर तो उसके दोनों हाथ हर घड़ी फैले रहते हैं। रास्ते से नदी तक के पहाड़ इतने सपाट हैं कि जरा चूके कि नीचे गये, इतने नीचे कि जहां हड्डी-पसली कुछ भी न बचे। चीड़ और देवदार यहां की शोभा हैं और कुलमाछ तथा जाम अपनी हरियाली से दर्शकों का मन हरा कर देते हैं।

प्रकृति के पक्षपात की ओर लक्ष करते हुए मैंने मुहम्मद रमजान से पूछा, "क्यों भई, यह क्या मामला है कि एक तरफके पहाड़ तो इतने रूखे-सूखे हैं और दूसरी तरफ के इतने हरे-भरे ?"

उसने बताया कि वहां हवा इस तरह चलती है कि इन रूखे पहाड़ों पर जो कुछ होता है, उसे उड़ाकर नीचे घाटी में ले जाती है और घाटी में से पहाड़ों पर। यही वजह है कि इधर से उड़कर जाने वाली चीजें नदी के किनारों पर और उधर के पहाड़ों पर जम जाती हैं। उसकी बात में सचाई मालूम हुई।

हम लोग साथ-साथ चलने का प्रयत्न करते थे, लेकिन कभी-कभी एक दूसरे से पिछड़ जाते थे या आगे निकल जाते थे।

तब मैं चिल्लाकर कहता, "मालक, हाऊ आर यू ?" (क्या हालचाल है, मालक ?)

तत्काल मालक की आवाज आती, "क्वाइट वैल।" (बिल्कुल ठीक।)

यही बात कभी भाभी से पूछता तो वह कहतीं, "मैं नहीं जानती तुम्हारी अंग्रेजी।" और यह वह कुछ ऐसे ढंग से कहतीं कि हम सब हँस पड़ते।

कहीं-कहीं रास्ता बहुत भयावना होता तो मैं गुलाम नबी या दूसरे आदमी से कहता कि वह आगे चला जाय और सुधीर के टट्टू को संभाल ले, लेकिन सुधीर उसे झिड़क देता। यही हाल दूसरे लोगों का था। सब-के-सब बहादुर सवार निकले और दो-एक स्थानों पर दो-एक व्यक्तियों को छोड़ कर किसी ने भी टट्टू वालों की सहायता नहीं ली।

पहलगाम में सबेरे घूमते हुए हमें पहाड़ की चोटियों पर पहले-पहल बर्फ दिखाई दी थी तो हम लोग बड़े प्रसन्न हुए थे, लेकिन यहां तो जगह-जगह पर झरने जमे हुए और पहाड़ बर्फ से ढके हुए दिखाई देते थे। दूर पहाड़ पर झरने की जमी हुई लकीर ऐसी जान पड़ती थी, मानों किसी ने कलई से एक लम्बी रेखा खींच दी हो। कहीं-कहीं से बर्फ के नीचे पानी की पतली धारा बहती दीख पड़ती थी। प्रकृति की विचित्र कारीगरी थी। उसे देख कर मन अघाता नहीं था, फूलता था और झूमता था। नीरस व्यक्ति के मुंह से भी यह फूट उठना स्वाभाविक था कि प्रकृति ने सचमुच यहां गजब किया है।

पहलगाम से चंदनवाड़ी तक के सारे रास्ते का यही हाल है। पर्वत, नदी और वृक्ष, जहां यात्री को पुलकित करते हैं, वहां मानव की कृति उन्हें चमत्कृत कर देती है। कैसे दुर्गम पर्वत को चीर कर उसने रास्ता निकाला है, जिस पर चलकर वर्षों से हजारों नर-नारी प्रकृति के अलौकिक सौंदर्य-स्रोत से अमृत-

तुल्य रस ग्रहण कर अपनी आत्मा को तृप्त करते हैं।

चदनवाड़ी की उंचाई समुद्र-तट से ९५०० फुट है। ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं, एक-से-एक बढ़कर दृश्य आते जाते हैं। आठ मील का रास्ता योंही कट जाता है। लिदर नदी जो पहलगाम से बाहर आकर शेषनाग नदी कहलाने लगती है, सच-मुच नाग-सी लहराती साथ चलती है।

चंदनवाड़ी का नाम कैसे पड़ा, यह ठीक से पता नहीं चलता। संभवतः किसी समय वहां चंदन के कुछ पेड़ रहे होंगे, लेकिन अब तो वहां एक भी चंदन का पेड़ नहीं है। घने-घने ऊंचे वृक्ष हैं, झरने हैं और थोड़ी-सी समतल भूमि है। अमरनाथ जाने वाले यात्री प्रायः आते-जाते रास्ते में रात को यहीं ठहर जाते हैं।

पहलगाम से चंदनवाड़ी तक मोटर की सड़क बन रही है। शायद सालभर में बन जायगी। तब मोटर में बैठे कि झट चंदन-वाड़ी पहुँचे। फुरसत के रास्ते का सौंदर्य देखने और उसका आनंद लूटने की फिर किसे सुविधा होगी! वस्तुतः ऐसे स्थानों की महिमा तभी देखी जा सकती है जब कि वहां की यात्रा पैदल या टट्टुओं पर की जाय। त्वरित साधन तो आंतरिक एवं बाह्य शांति को भंग करते हैं और प्रकृति के साथ निकट का संबंध स्थापित नहीं होने देते।

चंदनवाड़ी हम लोग डेढ़ बजे पहुंचे। वहां फिर एक काठ का पुल पार करना पड़ा।

चंदनवाड़ी छोटी-सी बस्ती है। कुछ लकड़ी और टीन के घर बने हैं, जिनमें यात्री रात को ठहरते हैं। कुछ दुकानें हैं। एक पंजाबी होटल है। जबतक शीत और बर्फ के कारण यहां आना-जाना असंभव नहीं हो जाता तबतक खूब चहल-पहल रहती है। लोग बराबर आते-जाते हैं और दिनभर यहां प्रकृति की गोद में खेलकर लौट जाते हैं। जिस समय हम लोग वहां पहुंचे, काफी लोग आये हुए थे। कोई टोली कहीं बैठी थी, कोई कहीं। चारों ओर

चहल-पहल थी, झरने का निनाद था, मीठी-मीठी धूप थी। तबीयत खुश हो गई।

होटल के सरदारजी गरम-गरम फुलके तैयार कर रहे थे। हम लोग पहलगाम से कुछ खा-पीकर चले थे, लेकिन आठ मील की चढ़ाई ने सारा खाया-पीया हजम कर डाला। रोटियां अच्छी तरह सिकवाईं। छककर भोजन किया।

खाना खाकर कुछ देर सुस्ताने के लिए हमारी पार्टी एक ओर झरने के किनारे घास पर लेट गई। हम लोगों को मालूम हुआ कि लगभग एक फर्लांग पर बर्फ का पुल है। विट्ठलजी और मैं उसे देखने गये। देखा तो आश्चर्य-चकित रह गये। यहां-से-वहां तक बर्फ-ही-बर्फ थी और उसके नीचे नदी की धारा इस प्रकार बह रही थी, जैसे उसके ऊपर कोई भार ही न हो। हम लोग देर तक उसे देखते रहे। दो बंगाली युवतियां, जिनमें से एक पतलून पहने हुए थीं, पुल को देख रही थीं। कुछ और भी लोग थे। मैंने लकड़ी का एक टुकड़ा उठाकर बर्फ में मारा। एक बड़ा-सा ढेला टूट कर गिर पड़ा। उसे फिर तोड़ा और उठा सकने योग्य बना कर लेकर चल दिये। जब अपनी पार्टी के पास आये तो वहां एक भोला-भाला युवक मिला। उम्र कोई २० वर्ष की होगी। मैंने विनोद में, साथ ही गंभीर स्वर में, उसे सुनाते हुए कहा, "देखो तो, चालाक दुकानदार ने इस जरा-सी बर्फ के साढ़े तीन आने ले लिये!"

युवक झट बोल पड़ा, "अरे, आपने पैसे क्यों दिये? यहां पास में ही बर्फ का पुल है। ढेरों बर्फ योंही ले आइये।"

मैंने उसी प्रकार गंभीरता से पूछा, "पुल कहां है?"

"यह रहा, दो कदम पर। चलिये, मैं साथ चलता हूं।"

युवक के भोले स्वभाव पर हमें हंसी आ गई। वह समझ गया कि हम लोग उसे बना रहे हैं।

थोड़ी देर में विष्णुजी की पार्टी भी आ गई। उन्होंने कुछ

खाया-पीया, और विश्राम किया । इतने में हम लोग फिर चलने को तैयार हो गये । यह तय हो ही गया था कि हमारी और विष्णुजी की टोलियाँ जोजपाल में साथ-साथ ठहरेंगी, इस लिए बिना उनकी प्रतीक्षा किये हम लोग चंदनवाड़ी से कोई ३–३।। बजे चल पड़े । जोजपाल यहां से करीब ४ मील था ।

: ८ :

चंदनवाड़ी से जोजपाल

हम लोग चंदनवाड़ी से आगे की यात्रा पर रवाना हुए तो काफी लोग चंदनवाड़ी से पहलगाम को लौट रहे थे । कुछ निश्चिंत इधर-उधर घूम रहे थे । थोड़ी देर में सब लौट जाने वाले थे । अमरनाथ के लिए रवाना होने वाली हमारी टोली में हमीं आठ जने थे । पहला पड़ाव सकुशल पार हो गया । अच्छे दृश्य मिले, अच्छा भोजन मिला, अच्छा साथ था, सबका मन प्रसन्न था ।

थोड़ी दूर चलते ही वह बर्फ का पुल दिखाई दिया, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है । इस यात्रा में इतनी बर्फ को निकट से देखने का यह पहला अवसर था । सबको बड़ी प्रसन्नता हुई । अब-तक वृक्ष, नदी, प्रपात आदि के दृश्य देखते आये थे । इसलिए इस नये प्रकार के दृश्य को देखकर हृदय में बड़ी गुदगुदी-सी हुई ।

शेषनाग नदी फिर साथ हो गई । थोड़ी दूर उसके किनारे-किनारे चले । उसके बाद एक घाटी पार करनी पड़ी, जिसने सारा खाया-पीया निकाल दिया । यह 'जुंआघाटी' कहलाती है । इसके बाद दूसरी घाटी आती है, जिसे 'पिस्सू घाटी' कहते हैं । जिस प्रकार जुंए और पिप्सू आदमी को हैरान करते हैं, उसी

प्रकार ये दोनों घाटियां यात्रियों को बड़ा कष्ट पहुंचाती हैं। दोनों घाटियां लगभग एक-एक मील की हैं और रास्ता बहुत ही ऊबड़-खाबड़, संकीर्ण और चक्करदार है। सामने उंचाई और पीछे निचाई इतनी कि देखकर एकबारगी दिल बैठने लगता है।

भाभी को टट्टू पर रहम आया। उन्होंने निश्चय किया कि घाटी को पैदल पार करेंगी। वह टट्टू से उतर पड़ीं। मैंने कहा कि घाटी कठिन है, नहीं चला जायगा, पर वह न मानीं। रमजान ने कहा, "आप चुप रहें। थोड़ी देर में अपने आप इनको चढ़ना पड़ेगा।" उसकी बात ठीक निकली। कुछ दूर चलने पर भाभी को इरादा बदलना पड़ा और फिर टट्टू पर सवार हो गईं। वास्तव में चढ़ाई बड़ी भयंकर थी। हम लोग थोड़े-थोड़े फासले पर थे और बच्चों की तरह अपने हर्ष को व्यक्त करते हुए एक-दूसरे को पुकारते थे। सुधीर सब से आगे था और चढ़ाई इस तरह पार कर रहा था, मानों पर्वतारोहण ही उसका धंधा हो। टट्टू वाले बताते जाते थे कि हमें कहां पहुंचना है। कुछ देर हम ऊपर देखते और फिर जरा पीछे निगाह डालते। दस-दस कदम पर टट्टुओं को सांस लेने के लिए रोकना पड़ता। टट्टू ऐसे हांफते थे, जैसे धौंकनी चल रही हो। इस प्रकार चलते और मुकाम करते-करते हम लोग आगे बढ़े। टट्टू वालों ने जब बताया कि हम लोग आधा रास्ता पार कर चुके हैं तो कुछ-कुछ चैन की सांस ली। आधी मंजिल अभी शेष थी। पीछे देखा तो विष्णुजी की पार्टी आती दिखाई दी। ऐसा मालूम होता था, मानों पतली लकीर जैसी पगडंडी पर कोई चींटी के बराबर वस्तु रेंग रही है। थोड़ा सुस्ताने के बाद हमारी टोली की कूच फिर शुरू हुई।

टट्टू वाले बराबर टट्टुओं को सावधान करने के लिए अपनी पारिभाषिक शब्दावली में कहते थे, "ओश-खबरदार!" पूछने पर मालूम हुआ कि 'ओश' का अर्थ है 'होशियार'। हम

लोगों ने भी यह शब्द याद कर लिया और आगे चलकर उसका प्रयोग टट्टू-वालों से भी अधिक करने लगे ।

पहलगाम में इन मरियल टट्टुओं को देख कर आशंका हुई थी कि कैसे इतने बीहड़ रास्ते को पार करेंगे । उनकी टांगें इतनी दुबली-पतली थीं कि कहीं भी डगमगा सकती थीं । रास्ते के बिल्कुल किनारे पर जब वे चलते थे तो शुरू-शुरू में झुंझलाहट होती थी कि क्यों वे बीच में या पहाड़ की ओर नहीं चलते और क्यों अपनी और सवार की जान खतरे में डालते हैं ? लेकिन जब जुंआ और पिप्सू घाटियां पार हुईं और हम लोग लगभग ११ हजार फुट की उंचाई पर सही-सलामत पहुंच गये तो इन टट्टुओं के प्रति हमारे मन में प्रशंसा और आत्मीयता के भाव उत्पन्न हो आये । क्या मजाल कि कोई टट्टू ठोकर खा जाय या गिर पड़े ! क्या मजाल कि कोई टट्टू आपको धोखा दे जाय ! आप उस पर सधे बैठे रहिये और उसे अपने हिसाब से चलने दीजिये । लगाम में झटका देने की जरूरत नहीं, अन्यथा आप उसकी एकाग्रता में बाधा डालेंगे । लगाम ढीली छोड़कर चुपचाप संभले बैठे रहिये और चढ़ाई आवे तो आगे को झुक जाइये, उतार हो तो रकाबों में पैरों को तानकर पीछे को खिंच जाइये । कभी धोखा नहीं खायंगे ।

इन घाटियों में चढ़ाई तो अधिक है ही, लेकिन रास्ते में मोड़-पर-मोड़ होने के कारण यात्रियों को बड़ी हैरानी होती है और कुछ का जी मिचलाने लगता है ।

सारी घाटी हरी-भरी है । बदलू, कुलमाछ और भोजपत्र के पेड़ों ने मार्ग की भयंकरता को अद्भुत सौंदर्य प्रदान किया है ।

टट्टू वालों से हमें मालूम हुआ कि सन् १९२८ तक एक दूसरा रास्ता अमरनाथ को जाता था जो बड़ा ही खतरनाक था । उसमें कहीं भी ठहरने की व्यवस्था नहीं थी । दैवयोग से अगर

बारिश आ गई या ओले पड़ गये तो यात्रियों को बेहद कष्ट होता था। कहते हैं, १९२८ में असाधारण रूप से वर्षा हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप सैकड़ों यात्री मर गये। मरने वालों में अधिकांश साधू-महात्मा और गरीब यात्री थे, जिनके पास शीत से बचने के लिए काफी कपड़े न थे। इस घटना से काश्मीर-राज्य का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया। उसने उस भयंकर रास्ते को बंद करा दिया और यह नया रास्ता चालू किया, जिस पर हम यात्रा कर रहे थे। इसकी विस्तृत चर्चा हम आगे चलकर करेंगे। सरकार ने नया रास्ता ही नहीं बनवाया, चंदनवाड़ी, शेषनाग तथा पंचतरणी के पड़ावों पर यात्रियों के ठहरने के लिए लकड़ी और टीन के घर भी बनवाये तथा मेले के दिनों में अधिक-से-अधिक सुविधाओं की व्यवस्था की।

पिस्सूघाटी सकुशल पार करके हम लोग जब चोटी पर पहुंचे और पीछे मुड़कर देखा तो एक प्रकार की भयमिश्रित प्रसन्नता हुई। कठिनाइयों को पार करने पर जिस प्रकार लोग अपने जीवन में प्रायः विजय का उल्लास अनुभव करते हैं, वैसी ही मनःस्थिति इस समय हम लोगों की थी।

ऊपर आकर टट्टुओं पर से उतर पड़े और उन्हें थोड़ी देर विश्राम करने तथा चरने के लिए छोड़ कर, अपने पैर सीधे करने के विचार से, पैदल चल दिये। पहलगाम से टट्टू पर बैठे-बैठे, चढ़ाई-उतराई पार करते-करते, टांगें अकड़-सी गई थीं। पैदल चलना अच्छा लगा। धूप चारों ओर फैली थी। उंचाई पर सर्दी कुछ बढ़ जाने के कारण वह बड़ी अच्छी लगी।

थोड़ा आगे निकलने पर फिर शेषनाग नदी आगई। जगह-जगह पर उसके ऊपर मोटी बर्फ जमी थी, जिसके नीचे जलधारा बहती थी। बरफ मटियाले रंग की दीखती थी, लेकिन उसके किनारे चांदी की तरह चमकते थे। बड़ा मनोहारी दृश्य था।

हम लोग ज्यों-ज्यों ऊंचे चढ़ते जाते थे, नदी की निचाई

नीची होती जाती थी और उसकी जलधारा नाले जैसी दिखाई देती थी। नीचे देखते डर लगता था। फिर भी हम आगे बढ़े जा रहे थे, बढ़े जा रहे थे। पिस्सू घाटी पार करते ही भाभी ने जोर से अमरनाथ की जय का नारा लगाया। उसके बाद अब तो पांच-पांच मिनट पर जय-जयकार होने लगा। सुधीर चिल्लाता था, "बोलो, अमरनाथ की . . . . ।" हम लोग कहते थे, "जय!" वह दो बार जयकार करता था और फिर अंत में कहता था, "आल राइट।" हम लोग हँस पड़ते थे। साथ अच्छा हो तो भारी-से-भारी यात्रा भी आसान लगती है। इस बात की पुष्टि यहां बहुत अच्छी तरह से हुई। इतने भयंकर मार्ग को हम हँसते-हँसते पार कर आये। जरा भी भारी न पड़ा।

मुंह में डालने के लिए इलायची और कुछ लेमनचूस की गोलियां साथ थीं। पानी की एक बोतल भी थी। वैसे पानी पीने के लिए कई जगह अच्छे चश्मे रास्ते में मिल जाते थे।

पिस्सू घाटी पार करने के बाद से हरियाली कम होने लगी, वृक्षों की संख्या घटने लगी और दृश्यों के रूप में परिवर्तन होने लगा। चंदनवाड़ी तक की मुग्ध करन वाली वृक्षराजि का स्थान अब सूखे पहाड़ लेने लगे, हरियाली स्वप्नवत् होने लगी।

सांप की तरह बलखाती नदी और उसीसे होड़ करते रास्ते की विभिन्न अदाओं को देखते हुए चार मील के रास्ते को साढ़े तीन घंटे में पार करके शाम को ६ बजे हम जोजपाल पहुंचे। उस समय सूर्य-देवता पश्चिम में पहुंच चुके थे और अस्ताचल की ओर जाने की तैयारी में थे।

जोजपाल चारों ओर से पहाड़ों से घिरा शेषनाग नदी के किनारे एक छोटा-सा मैदान है। पेड़ का नामो-निशान नहीं। मेले के समय की गंदगी के अवशेष अब भी वहां विद्यमान थे। हम लोगों को वैसे वायुजन जाकर ठहरना चाहिए था, लेकिन हमें बताया गया था कि वायुजन की अपेक्षा जोजपाल में हवा

और सर्दी कम होगी। इसलिए रात को जोजपाल में ही तम्बू लगाकर ठहरना अधिक सुविधाजनक होगा। सामान अभी पीछे था और दूसरी पार्टी के आने में देर थी।

जोजपाल के मैदान में पहुंच कर टट्टुओं से उतरे तो सर्दी के मारे हाथ ठिठुर रहे थे। चादर, ओवर कोट आदि की आवश्यकता अनुभव न होने के कारण सामान के साथ रख दिये थे। अब उनका अभाव खटका, पर कोई चारा न था। दूसरी पार्टी के एक आदमी ने पहले पहुंच कर नदी के किनारे एक छोटी-सी गुफा में आग जला ली थी। हम लोग वहीं चले गये। आग के चारों ओर बैठ कर तापने और बातें करने लगे। लकड़ियों के धुंए से सारी गुफा भर गई। धुंए से हम लोगों की आंखें फूटी जाती थीं, लेकिन बाहर सर्दी इतनी अधिक थी कि जबतक सामान न आजाय तबतक बाहर निकलने का साहस न होता था।

: ९ :

एक रोमांचकारी अनुभव

आधा घंटे प्रतीक्षा करने के बाद दूसरी टोली आ गई और हम लोग बरबस गुफा से निकलकर बाहर आये। विष्णुजी उस टोली के नेता थे। उन सबके आ जाने से बड़ी प्रसन्नता हुई। ठंडी हवा चल पड़ी थी। सब लोग जाड़े के मारे कांप रहे थे। सूर्य छिप चुका था और अंधेरा धीरे-धीरे फैलता जा रहा था। साथ ही सर्दी भी बढ़ती जा रही थी । आसमान में एक ओर से कुछ काले-काले बादल घिरते दिखाई दे रहे थे। उन्हें देख-देखकर हम लोगों का मन किसी अज्ञात आशंका से कांपने लगा।

थोड़ी देर में इधर सामान पहुंचा और उधर आसमान से हल्की-हल्की बूंदें पड़ने लगीं। टट्टू वालों ने सामान उतारा और आनन-फानन में तम्बू खड़े कर दिये। हम लोगों के पास केवल एक

तम्बू था, जिसमें आठ जनों के सोने की व्यवस्था करनी थी और उसी में सामान भी जमाना था। नीचे घास की मोटी चटाइयां बिछाकर विस्तर लगाये और एक ओर को सामान रक्खा। दिन भर के थके थे। सोचा कि निवृत्त होकर थोड़ा-बहुत भोजन कर लें और जल्दी ही सो जायं, जिससे सुबह उठकर सूर्योदय तक तैयार होकर निकल पड़ें।

निवृत्त होने के लिए नीचे उतरकर नदी तक जाना पड़ा। जब पानी में हाथ दिया तो बर्फ-सा ठण्डा था। ऐसा जान पड़ा, मानो उंगलियां कट कर गिर गई हों। एक अंगीठी में थोड़े से कोयले जलवाये और उस पर पानी गरम होने को रख दिया। भोजन करने बैठे। मार्तंडजी ने खाना नहीं खाया। उनके सिर में दर्द हो रहा था। हमारा भोजन खत्म हुआ ही था कि पड़-पड़ करता जोर का पानी आ गया। जिधर सामान रक्खा था, उधर तम्बू इकहरा था। इसलिए पानी छनछन कर अंदर आने लगा। डर हुआ कि कहीं सामान न भीग जाय। और चीजों की तो उतनी चिंता नहीं थी, जितनी कि आटे और कोयलों की थी। बरसातियां मंगाकर सामान पर डालीं। यह सब कर रहे थे कि पानी के साथ जोर के ओले पड़ने लगे। तम्बू के ऊपर ओलों की पड़पड़ाहट ऐसी प्रतीत होती थी, मानो ईंट-पत्थर गिर रहे हों। हम लोग सिमटे हुए अंदर अपने-अपने बिस्तरों पर पड़े थे। एक लालटेन टिमटिमाती जल रही थी। पानी के बचाव के लिए तम्बू को अच्छी तरह से बंद कर लिया। एक तो उंचाई फिर छोटी-सी जगह में आठ जने, लालटेन का धुंआ और ऊपर से ओले, सबका जी घुटने लगा। थोड़ी देर में देखता क्या हूं कि पानी मेरे बिस्तर के नीचे आने लगा। असल में तम्बू के सहारे-सहारे एक नाली बना दी जाती है, जिससे पानी आवे तो उस नाली में होकर निकल जाय। हमारा तम्बू खड़ा करने वालों ने जल्दी में पुरानी बनी नाली का ध्यान नहीं रक्खा था। उसी नाली से होकर पानी अंदर आने लगा। एक नई परेशानी सामने आ गई। यों किनारे

पर सबके बिस्तर भीग रहे थे, कारण कि तम्बू कुछ हद तक ही पानी को रोक सकता था, लेकिन जब बिस्तर के नीचे पानी आने लगा तब विशेष चिंता होने लगी। मेरे बिस्तर के नीचे से होकर वह नाली तंबू के अंदर आई थी। उसमें पानी भरा था, चटाई बिल्कुल भीग गई थी। निकलने का रास्ता न होने के कारण पानी और बढ़ता जा रहा था। एक नई हैरानी पैदा हो गई। एकाएक हममें से एक ने सोचा कि जिधर से नाली में पानी आ रहा है उधर से बिस्तर के नीचे बरसाती की रोक लगा दी जाय। रोक लगाई, पर उससे कितनी बचत हो सकती थी।

रात को बारह बजे तक यही स्थिति रही। पानी और ओले पड़ते रहे। हम लोग भगवान का नाम लेते कभी बैठते कभी लेट जाते। मार्तण्डजी के सिर में दर्द तो पहले से था ही, उन्हें सांस लेने में भी कुछ कठिनाई होने लगी, लेकिन वे चुपचाप पड़े रहे। उन्होंने कुछ कहा नहीं।

आधी रात के बाद जब ओले थमे और पानी बंद हुआ तो त्रयोदशी का चंद्रमा आकाश में चमकने लगा। बाहर से मार्तंडजी की आवाज आई कि जरा बाहर आकर देखिये, कैसा बढ़िया दृश्य है! तबीयत बड़ी गिरी-सी थी, दिनभर की टट्टू की सवारी और चढ़ाई की थकान के कारण देह टूट रही थी। अन्य-मनस्क भाव से बाहर आया। पर बाहर जो देखा उससे तबीयत खिल उठी, सारी थकान दूर हो गई। चांदनी छिटकी हुई थी और चारों ओर बिछी बर्फ चांदी-सी चमक रही थी। दूर-पास सबकुछ सफेद नजर आता था। तम्बू के चारों ओर बर्फ की मोटी-सी तह लगी थी। ऊपर से दूध-सी चांदनी छिटकी थी और शुभ्राकाश में गोलाकार चांद अपनी आभा खुले हाथों बिखेर रहा था। सप्तऋषि मुस्करा रहे थे। जीवन का वह अपूर्व अनुभव था। सब लोगों ने उठ-उठ कर वह अद्भुत दृश्य देखा।

ओले-पानी बंद हो जाने पर विष्णुजी भी अपने तम्बू से बाहर निकल आये। वह भी परेशान थे, क्योंकि इतने ओले और वर्षा का सामना करना होगा, इसकी कल्पना किसी ने भी नहीं की थी। उनका एक तम्बू हवा के जोर से उड़ गया था, कपड़े भीग गये थ, खाना ठीक से नहीं बन पाया, न वे लोग कुछ खा ही सके थे। जो हुआ, उससे अधिक चिंता इस बात की होने लगी कि यही हाल रहा तो आगे की यात्रा कैसे पूरी होगी। एक भय मन में समा गया।

विष्णुजी के पास दो तम्बू और दो रावटी थीं। उन्होंने कहा कि हम लोगों को एक तम्बू में असुविधा हो तो कुछ लोग उनके तम्बू में आ जायं, लेकिन इतनी रात में सामान लेकर इधर-से-उधर जाना ठीक नहीं समझा और थकान के मारे हिम्मत भी नहीं थी इतनी उठा-धरी करने की। उनके प्रस्ताव के लिए धन्यवाद दिया और शेष रात अपने तम्बू में काल-कोठरी की भांति व्यतीत की। बिस्तर भीग गये थे और तम्बू में इतनी जगह नहीं थी कि हम लोग पूरे पैर भी फैला लेते। नींद तो किसी को आई नहीं। रात्रि की नीरवता को चीरता शेषनाग नदी का स्वर निरंतर सुनाई पड़ रहा था।

सबेरे उठे तो बर्फ काफी पिघल गई थी, फिर भी इधर-उधर अब भी बिखरी पड़ी थी। जिस बर्फ ने रात को हम लोगों के हृदय को भयाक्रांत कर दिया था वही अब हमारे मनोरंजन का साधन बन गई थी।

सर्दी इतनी अधिक थी कि हमारे दांत बजते थे। नदी में हाथमुंह धोने गये तो ऐसा लगा कि हाथ गल गये। झट ओवरकोट की जेब में डाल लिये, लेकिन कहां गरम होते थे!

अंगीठी पर चाय के लिए पानी रख दिया और हम लोग बिस्तर बांधने लगे। इतने में विष्णुजी की पत्नी ललिताबहन आईं और उन्होंने बताया कि विष्णुजी ने तो आगे जाने का इरादा

छोड़ दिया है और यहीं से वापस लौट जाना चाहते हैं। मैंने पूछा, "आपकी क्या इच्छा है ?"

बोलीं, "हम लोग तो अमरनाथ जाना चाहते हैं। यहां आकर लौट जाने में भला क्या बुद्धिमानी है ?"

विट्ठलजी ने आशा दिलाते हुए कहा, "आप लोग चलने की तैयारी करें। हम विष्णुजी को मना लेंगे।"

ललिताबहन चली गईं। उनके जाने के कुछ ही देर बाद गुलाम नबी ने बताया कि रात को हम लोगों के चार टट्टू कहीं चले गये हैं। सुनकर स्तब्ध रह गये। अब क्या होगा ? गुलाम नबी ने कहा, "रात को पानी और ओले पड़ने से गजब हो गया। बचाव को कुछ था नहीं। बेचारे टट्टू अपनी जान बचाने के लिए कहीं भाग गये। रमजान और कुछ लोग उन्हें तलाश करने गये हैं।" हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि टट्टू न आये तो आगे की यात्रा कैसे होगी ?

हम लोग रात को चर्चा कर रहे थे कि तम्बू में बैठे-बैठे जब हम पर ऐसी बीत रही है तो बेचारे टट्टू वालों और टट्टुओं को तो न जाने कितनी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा होगा, जिनकी रक्षा के लिए नीचे तंग गुफा और ऊपर पत्थरों को जोड़ कर और मेले के समय की पड़ी टीन को ऊपर रखकर बनाई गई छोटी-सी मढ़ी के अतिरिक्त और कुछ न था। उन्होंने जैसे-तैसे रात काटी, नींद तो उनको भी कहां से आती ! सोने को जगह थी ही नहीं। टट्टुओं को खोजते रात में भटकना पड़ा, सो अलग।

बिस्तर बांध कर हम लोग बाहर आये और विष्णुजी के तम्बू की तरफ गये। विष्णुजी निवृत्त होकर आये ही थे। मैंने हँसते हुए कहा, "क्यों विष्णुजी, क्या हालचाल है? सुना है, आप तो लौटने की तैयारी कर रहे हैं ? जरा से में घबरा गये क्या ?"

उन्होंने मुस्कराते हुये कहा, "जरा-सी बात थी, महाराज !

यहां तो जान निकलने की नौबत आ गई। आप लोगों का पता भी नहीं चला कि हम हैं कहां ? जब ओले पड़ रहे थे, आप लोग तो आराम से सो रहे थे। हम लोगों का तो एक तम्बू ही उखड़ गया। सारे कपड़े भीग गये। बड़ी मुश्किल से खड़ा किया। सारी रात जागते काटी है। बाज आये ऐसी यात्रा से, महाराज ! हमने तो लौटने का तय कर लिया है।"

विट्ठलजी ने कहा, "आप भी क्या बात करते हैं विष्णुजी, ऐसी ही चीजें तो यात्रा को मजेदार बनाती हैं।"

विष्णुजी बोले, "मजेदार तो बनाती हैं, पर जान भी तो फालतू नहीं है। अपन तो अब आगे जाने के नहीं। बारिश के कारण आगे का रास्ता जरूर बिगड़ गया होगा। इतनी ही मुसीबत काफी है। स्वाद चख लिया। और मुसीबत कौन उठावेगा ?"

मैंने उन्हें जोश दिलाते हुये कहा, "विष्णुजी, कैसी बात करते हैं आप ! आपसे अच्छी तो ललिताबहन हैं, जिन्होंने अभी तक हिम्मत नहीं हारी और अमरनाथ जाने को तैयार हैं।"

"तो उनको आप लोग ले जायं। अपने राम तो वापस ही जावेंगे।"

हम लोगों ने उनको बहुत समझाया और उनके मन का डर कम करने की काफी कोशिश की। तब विष्णुजी गंभीर होकर बोले, "देखिये साहब, आप हिम्मत की बातें तो करते हैं, लेकिन क्या ठिकाना कि आगे फिर बारिश आ जाय ! रास्ते में बरफ हुई तो ? रास्ता रपटीला हुआ तो ? कोई दुर्घटना हो गई तो ? कौन जिम्मेदार होगा ?"

लेकिन हम लोगों की पार्टी के उत्साह और आगे बढ़ने के निश्चय तथा विट्ठलजी की विश्वास-भरी बातों से विष्णुजी ढीले पड़े। बोले, "बड़ी जिम्मेदारी है साहब, इतनी बड़ी पलटन को मुसीबत-भरी यात्रा कराने में।"

विट्ठलजी बोले, "आप बेफिक्र होकर चलें। विश्वास रखें,

अब कुछ होगा ही नहीं।"

विष्णुजी फौरन बोल उठे, "और होगा भी तो आप करेंगे क्या ? रात को ही अपने क्या कर लिया था ?"

"अजी, आप चलिये तो सही, भगवान का नाम लेकर। सब ठीक होगा।" विट्ठलजी ने और मैंने कहा।

विष्णुजी का मन जाने और न जाने के बीच झूल रहा था। सबका आग्रह देखा तो वह जाने को तैयार हो गये। उनकी तैयारी तो हो ही रही थी। वापस जाते या आगे जाते। उन्होंने कहा कि आप लोग चलिये। हम जरा नाश्ता करके आपके पीछे-पीछे आते हैं।

हम लोगों ने अपने तम्बू में लौट कर शेष सामान को ठीक किया। गुलामनबी ने खुशखबरी दी कि टट्टू मिल गये हैं। जान-में-जान आई। हम लोगों ने जलपान किया, टट्टू वालों ने सामान लादा और कूच को तैयार हो गये।

लेकिन धीरे-धीरे आकाश में बादल घिरने लगे। विष्णु-जी ने पुकारा, "यशपालजी, देखते हैं, यह क्या हो रहा है ? आप लोग हमारी मुसीबत करने पर तुले हुए मालूम होते हैं !"

हम लोगों ने बिना किसी भय के उत्तर दिया, "आप चिन्ता न करें। बस, जल्दी रवाना हो जायं। भगवान सब ठीक करेंगे।"

टट्टुओं को देखकर दया आती थी। रात भर बेचारे भीगते और भूखे भटकते रहे थे। न वहां बचने को कोई पेड़ था, न चरने को घास। जाने कैसे, उन मूक प्राणियों ने रात काटी होगी, और टट्टू वाले तो रात भर उनको खोजने में ही भागते फिरे थे। सुबह फिर आगे की मंजिल के लिए तैयार। उनकी यह हिम्मत और फुर्ती देखकर मन उनकी प्रशंसा से भर गया और उनकी तुलना में अपने ऊपर शर्म आई।

विष्णुजी अभी तैयार न थे। उनकी पार्टी खाने-पीने में लगी थी, चाय पी रही थी। हमारी पार्टी टट्टुओं पर सवार होकर चल

दी। मैंने सोचा कि कहीं हम लोगों के निकल जाने पर इन लोगों का विचार न बदल जाय। अत: मैं अपनी पार्टी का साथ छोड़ कर विष्णुजी की पार्टी के साथ जाने को रुक गया। मैं बार-बार उनके टट्टू वालों से टट्टू कसने को कहता था, पर वे सुनते ही न थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो वे भी जाने से आनाकानी कर रहे हैं। तब मैंने उनको डांटकर कहा कि देर हो रही है। टट्टू तैयार करो। इस पर अलकसाता-सा एक टट्टूवाला उठा और इधर-उधर फैले टट्टुओं को इकट्ठा कर लाया। तबतक विष्णुजी और उनकी पार्टी कलेबा कर चुकी थी। टट्टू कसकर आते ही रवाना हो गये। क्षितिज पर जहां निगाह जाती थी, बादल-ही-बादल दिखाई देते थे। विष्णुजी की पार्टी के एक साथी ने कहा, "मौसम बड़ा खराब हो रहा है। देखो, कैसे बादल छाये हुए हैं।"

मैंने कहा, "ये बादल बरसने वाले नहीं हैं।"

"रात भी तो ऐसे ही थे।"

"जी नहीं, रात के बादल तो काले थे।"

विष्णुजी ने कहा, "अब तो चल ही पड़े हैं। बादल काले हों या सफेद, जो होगा देखा जायगा।"

हम लोग आगे बढ़ चले। मैंने एक बार मुड़ कर जोजपाल को देखा। एक क्षण में रात का सारा दृश्य आंखों के आगे घूम गया। मैंने मन-ही-मन उस अदृश्य शक्ति को प्रणाम किया, जो प्रकृति और मानव की प्रत्येक क्रिया का संचालन करती है और जिसकी मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।

: १० :

कुट्टाघाटी, शेषनाग और वायुजन

हमारी टोली आगे निकल गई थी और जब विष्णुजी की टोली रवाना हुई तो बादल काफी घिर आये थे। आगे बढ़ने का

उत्साह और निश्चय होने पर भी मन आशंकित हो उठा था।

मैदान पार करने के बाद फिर चढ़ाई शुरू हो गई, लेकिन दृश्य अब पहले जैसे न थे। किसी भी पर्वत पर पेड़ देखने को भी न थे। सारे पहाड़ नंग खड़े थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो व हृदय की विशालता के साथ-साथ अपरिग्रह का पाठ भी पढ़ा रह हों। कह रहे हों कि आदमी ज्यों-ज्यों ऊपर उठता है, दुनिया का आडम्बर कम होता जाता है और किसी किस्म का लगाव नहीं रह जाता है। हमारे ऊपर मेघाच्छन्न अनन्त आकाश था, दोनों ओर नंगी पहाड़ी चोटियां, पतला मार्ग और पहाड़ों के बीच वेग से बहने वाली शेषनाग नदी। सब भयानक था, लेकिन विशालता और भव्यता लिये हुए। महान साहस अथवा अचल श्रद्धा के बिना यहां कोई दो कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

जोजपाल से कुछ आगे चल कर कुट्टाघाटी आई। इसकी लम्बाई लगभग एक मील थी, लेकिन चढ़ाई इतनी सख्त और खतरनाक थी कि भलों-भलों के होश गायब हो सकते थे। रास्ता बहुत ही ऊबड़-खाबड़ था। पत्थर-पर-पत्थर पड़े थे। ऐसे में जब एक प्रवाहित झरने को पार करना पड़ा तो मन एक साथ सिहर उठा। बनिहाल की घाटी हम लोगों ने बस में बैठकर पार की थी और उसकी सबसे ऊंची चोटी पीरपंचाल पर पहुंचकर लगा था, जैसे हम लोगों ने कोई गढ़ जीत लिया हो। पिस्सू घाटी को पार करने में भी वड़े आनंद का अनुभव हुआ था, लेकिन अब तो हम ११,६०० फुट की उंचाई पर थे और इच्छा होती थी कि उंचाई पर भले ही चढ़ें, पर रास्ता इतना जानलेवा तो न हो। पत्थर पर टट्टू जिस समय अपना पर रखता था तो ऐसा जान पड़ता था कि अब फिसला, अब फिसला। और वहां फिसलने का अर्थ होता था सीधे पाताल-दर्शन। पर वाह रे टट्टुओ, एक के बाद एक, ऐसे सधे हुए पैर रखते थे कि

क्या मजाल जो कहीं चूक हो जाय। उन्हें देखकर मेरे मन में विचार आया कि हम लोग अपने जीवन में ठोकर इसलिए नहीं खाते कि मार्ग असमतल होता है, बल्कि इसलिए खाते हैं कि हम धीरज के साथ और साधकर कदम नहीं उठाते। यहां अगर कोई भी टट्टू उतावली से कदम उठावे तो निश्चय ही स्वयं डूबे और सवार को भी डुबो दे। हम लोग बहुत-सी चीजें मूक प्राणियों से सीख सकते हैं, बशर्ते कि हमारे पास देखने को खुली आंखें और सीखने को जिज्ञासा हो।

हम लोग ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते थे, बादलों का जमघट गहरा होता जाता था। कुट्टाघाटी जैसे-तैसे पार हुई। हम लोगों ने टट्टूवालों से कह दिया था कि भोजन शेषनाग पहुंचकर करेंगे, लेकिन बादलों को देखकर इच्छा होती थी कि जितना आगे निकल जायं, उतना ही अच्छा है।

कुट्टाघाटी के बाद चौपानों का मुकाम आया। यहां भेड़ों का रेवड़ मिला। उसमें कुछ बकरियां भी थीं। देखकर अचरज हुआ कि जहां पेड़ का नाम नहीं, आदमी के दर्शन नहीं, वहां इतनी भेड़ें! काफी बड़ा रेवड़ था, कोई हजार के आसपास रही होंगी, लेकिन उनकी रखवाली के लिए दो या तीन व्यक्ति थे, जिनमें एक छोटी-सी लड़की भी थी। भेड़ें बैठी जुगाली कर रही थीं और कुछ एक-दूसरे पर गर्दन टिकाये सो रही थीं। इन भेड़ों के शरीर तो अपने यहां की मैदानी भेड़ों जैसे थे, लेकिन बाल कुछ अधिक लम्बे थे और सींग मुड़े और गर्दन की ओर झुके हुये थे। बकरियों के शरीर पर खूब बड़े-बड़े बाल थे। असल में प्रकृति बड़ी समझदार है। जहां जिसको पैदा करती है, देश-काल के अनुसार उसी प्रकार के साधन उसके लिए जुटा देती हैं। यदि प्रकृति ने बकरियों को इतने बड़े बाल न दिये होते तो वे बिचारी जाड़े में ठिठुर कर मर न जातीं! ऐसा अन्याय प्रकृति के हाथों कैसे हो सकता था?

हम लोगों को देख कर भेड़ें विचलित नहीं हुईं। ज्यों-की-त्यों बैठी रहीं। हम लोग एक ओर होकर आगे बढ़ गये।

इसके पश्चात एक छोटी घाटी और पार की। शेषनाग नदी हम लोगों के साथ ही चल रही थी। अब वह इकली थी। उसकी शोभा में चार चांद लगाने वाले घने वृक्ष पीछे छूट गये थे और वह एकाकी पथिक की भांति अकेली, नितांत अकेली, पर्वतों के वक्ष को चीर कर अपने मार्ग पर चल रही थी। अचंभा होता था कि इतनी उंचाई पर इतनी तीव्र प्रवाहिनी नदी का क्या प्रयोजन है? पर प्रकृति की माया को कौन जान सकता है?

जोजपाल से शेषनाग कुल चार मील है, लेकिन ८ बजे के चले हम लोग वहां १०-३० पर पहुंचे। इस स्थान का बड़ा धार्मिक महत्व है। यहां एक झील है, जिसमें से हमारे अबतक के रास्ते की चिरसंगिनि शेषनाग नदी निकलती है। झील का आकार काफी लम्बा-चौड़ा है और उसका जल नीलवर्ण का बड़ा ही स्वच्छ है। ठण्डा इतना कि हाथ डालना मुश्किल। यह झील पहाड़ों की गोद में है। इधर-उधर पहाड़ों की चोटियों पर वर्फ लदी थी। हमने अनुमान किया कि यह शायद पिछले रात की वर्षा और ओलों के कारण है, लेकिन पूछने पर मालूम हुआ कि वहां बर्फ हमेशा जमी रहती है। झील समुद्र-तट से ११,७३० फुट ऊंची है।

झील से लगभग एक मील पर वायुजन स्थान आता है। यहां हवा बड़ी तेज चलती है और इसीलिए इसका यह नाम पड़ा है। यहां सर्दी भी बहुत अधिक है। यात्रियों के ठहरने के लिए यहां टीन के अस्तबल जैसे घर बने हैं। दो रेस्ट-हाऊस हैं। स्थान बड़ा रमणीक है। सामने हिमाच्छादित पर्वत, नीचे शेषनाग झील जिसमें से शान से बहती शेषनाग नदी। बहुत से यात्री यहां आकर लौट जाते हैं।

हम लोगों की पहली टोली यहीं आकर रुक गई। विष्णुजी

की टोली के साथ मैं भी वहां पहुंच गया । अब सलाह होने लगी कि भोजन के लिए यहां रुका जाय या आगे बढ़ा जाय । आकाश अब भी बादलों से लदा खड़ा था । विष्णुजी ने मुस्कराते हुए जब बादलों की ओर इशारा किया तो हम लोगों ने कह दिया, "देखिये अब तो निकल पड़े हैं । इन बादलों को देखकर अपना निश्चय बदलने वाले हैं नहीं । सब लोग साथ हैं । जो बीतेगी, सबके साथ बीतेगी । भगवान सब ठीक ही करेंगे ।"

हम लोग एक चट्टान पर बैठे थे । भूख लगी थी और कुछ मुंह चलाते जाते थे । बादलों को देख कर और वर्षा की आशंका की कल्पना करके रुकने को जी नहीं होता था । वस भी सामान के टट्टू पीछे थे । उम्मीद थी कि दस-पांच मिनट में आ जायंगे, लेकिन सर्वसमिति से सलाह हुई कि रुकना ठीक नहीं होगा । यही तय किया कि सामान के टट्टू आ जायं तो सब साथ आगे को चल दें ।

सर्दी यहां कड़ाके की थी, पर उसकी ओर ध्यान देने का जैसे किसी के पास अवकाश न था । हम लोग कभी वहां की निराली शोभा को निरखकर पुलकित होते थे तो कभी बादलों को देखकर चिंतित हो उठते थे । पूर्वी-पश्चिमी कोने के पहाड़ का दृश्य तो अद्भुत था । उसकी बनावट बड़ी आकर्षक थी, साथ ही बर्फ उसपर कुछ इस ढंग से पड़ी थी कि हम लोगों की निगाह उस पर से हटती ही न थी । बादल उसपर घिर रहे थे । वहां एक बड़ी कन्दरा का बोध होता था । हम लोगों ने पर्वतराज के उस महान दृश्य का चित्र लिया । यदि सूर्य भगवान के दर्शन एक मिनट को भी हो जाते तो उस दृश्य का बड़ा ही भव्य चित्र आता ।

इस स्थान के विषय में एक धर्म-कथा प्रचलित है । कहते हैं, किसी जमाने में इस पर्वत पर एक बलवान राक्षस रहता था, जो वायु के रूप वाला था । वह देवताओं को बड़ा कष्ट देता था । उससे त्रस्त होकर सारे देवता शिवजी के पास गये, उनकी स्तुति

की; शिवजी प्रसन्न हुए। देवताओं ने राक्षस के त्रास की कहानी कह सुनाई। शिवजी ने कहा, "मैंने उसे वरदान दिया है कि मैं उसे नहीं मार सकता। आप लोग विष्णुजी के पास जाओ।" तब देवों ने क्षीरसागर पर जाकर विष्णु की स्तुति की। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, "मैं अभी उस राक्षस का नाश कर डालूंगा।" देवता चले गये। तभी पाताल से शेषनाग प्रकट हुए। विष्णुजी ने उनपर चढ़कर आज्ञा की कि हे सर्पराज, तुम हजार मुख से वायु का पान करो। सर्पराज ने ऐसा ही किया और वायुरूप राक्षस का भक्षण कर लिया। कहते हैं, उसी समय से इसका नाम शेषनाग पड़ गया। बाद में एक और दैत्य ने यहां उपद्रव किया और इन्द्र ने अपने वज्र से इसी स्थान पर उसका हनन किया। तब से यह स्थान वायुवर्जन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कालांतर में वायुवर्जन से बिगड़ कर वायुजन हो गया। जो हो, स्थान बड़ा सुन्दर है।

: ११ :

फिर मुसीबत

वायुजन में हम लोग मुश्किल से आधा घंटा ठहरे होंगे कि फिर चल पड़े। आगे की यात्रा अब और कठिन दिखाई पड़ रही थी। पेड़ों का साथ जोजपाल में छूट गया था। यहां आकर नदी से भी विछोह हो गया। अपने मायके पहुंचकर और अपनी जननी की गोद में सिर रखकर वह तो प्रसन्न हो गई, लेकिन हम लोगों को उसका वियोग दुखदाई हो गया। परन्तु शोक-संताप के लिए समय और सुविधा कहां थी! हम लोगों ने दूर से ही झील, नदी और हिमाच्छादित पर्वत को मन-ही-मन प्रणाम किया और आगे बढ़ गये। वायुजन की उंचाई लगभग तेरह हजार फुट है।

कुछ दूर तक उतराई आई। पर्वतों में उतराई भी चढ़ाई

से कम मुसीबत की नहीं होती। यात्री जानते हैं कि उतराई का अर्थ होता है फिर चढ़ाई। दूसरे उतराई पर अपने शरीर को साधने में अधिक होशियारी और संतुलन की आवश्यकता होती है।

यहां से पंचतरणी आठ मील थी। वहां पहुंचकर रात बितानी थी। हम लोग भगवान से प्रार्थना कर रहे थे कि कैसे हो पंचतरणी पहुंच जायं। वहां यात्रियों के ठहरने के लिए पत्थर और टीन के कुछ घर बने हुए हैं। वहां पहुंचने पर वर्षा भी आ जाय तो अधिक परेशानी नहीं होगी।

आगे के रास्ते में झरने बहुत आते हैं और उन्हें बार-बार पार करना पड़ता है। मेले के समय उन पर पुल बनाये गये होंगे, लेकिन उनमें से अब अधिकांश टूट चुके थे और उन्हें पार करने के लिए जलधारा में होकर जाना पड़ता था। वायुजन से चलकर पहला प्रपात आया। सुधीर सबसे आगे था। उसका टट्टू पुल के रास्ते आगे बढ़ा जा रहा था और करीब-करीब सिरे तक पहुंच गया था। पुल टूटा था। एक कदम और बढ़ा तो वह और सुधीर धड़ाम से नीचे पानी में गिरेंगे, इस आशंका से मैं कांप उठा; लेकिन सुधीर ने तत्काल लगाम खींची, और टट्टू भी कहां उस खतरे को उठाने वाला था! इतने में पीछे से लपक कर टट्टूवाले ने लगाम पकड़ ली, मोड़कर नीचे ले आया और धारा को पार करा दिया।

हम लोगों ने चंदनवाड़ी पर पहला बर्फ का पुल देखा था, बाद में कुछ स्थानों पर नदी के ऊपर बर्फ जमी देखी, लेकिन अब जो दृश्य सामने आये, उनके आगे–पीछे के सब दृश्य फीके पड़ गये। यहां अधिकांश उपत्यकाएं बर्फ से जमी पड़ी थीं।

टट्टूवालों ने बताया कि बर्फ पर चलना खतरे से खाली नहीं होता। अगर बर्फ कहीं से टूट जाय तो टट्टू और सवार एकदम नीचे चले जायं और दोनों का पता भी न चले। इस प्रकार

जानें चली जाने की कई घटनाएं हम पढ़ चुके थे। कई स्थानों पर बर्फ टूटी दिखाई दी और उसके बीच बड़े-बड़े छेद मिले।

झरना पार करने के बाद फिर चढ़ाई शुरू हुई। अब रास्ता इतना संकरा और ढलवां था कि इधर-उधर देखते डर लगता था। यहां हमें और यात्री भी आगे जाते हुए मिले। मन में संतोष हुआ कि चलो, आगे जो खतरा आयगा उसका मिलजुल कर मुकाबला कर लेंगे।

दृश्य यहां के बड़े भव्य और निराले थे। पर्वत हिममंडित, उपत्यकाएं बर्फ से ढकी और रास्ता संकीर्ण। जैसे-तैसे एक पहाड़ पार किया। टट्टू वालों ने दूर एक पहाड़ की ओर संकेत करके बताया कि हमें उस चोटी पर जाना है। उन्होंने यह भी कहा कि यह चढ़ाई सबसे कठिन है।

बादलों का रंग अब और गहरा हो गया था और ज्योंही हम लोगों ने कठिन चढ़ाई पर पैर रक्खा कि बूंदाबांदी शुरू हो गई। पाठक सोच सकते हैं कि उस समय हमारे मन पर क्या बीती होगी। मेंह से बचने के लिए न कोई रूख, न कोई गुफा, न कुछ सहारा। हम लोगों ने बरसातियां ओढ़ लीं और घबराहट को हृदय में छिपाये आगे बढ़ने लगे। वर्षा के साथ-साथ कोहरा इतना घना था कि गज भर आगे का भी रास्ता नहीं दीखता था। लेकिन दृश्य घड़ी-घड़ी बदलते थे। कभी कोहरा इतना गहरा हो जाता था कि रास्ता नहीं सूझता था, कभी इतना साफ हो जाता था कि मार्ग की भयंकरता स्पष्ट दीख जाती थी और दिल दहल उठता था।

हम लोग चुपचाप चले जा रहे थे। इतने में मार्ग की नीरवता को भंग करती हुई और भयंकरता की ओर से ध्यान हटाती हुई एक सुरीली और कांपती हुई बारीक-सी आवाज कानों में पड़ी, 'जय शिवशंभो', 'जय शिवशंभो', 'जय शिवशंभो धरणीशं', 'वंदे गंगाधरमीशं', और सारी पार्टी उत्साह से 'जय शिवशंभो',

'जय शिवशंभो' के नाद का उच्चार करने लगी, मानो सबको एक बड़ा भारी सहारा मिल गया—रास्ते की भयंकरता से ध्यान हटाने और दुर्गम पथ पर हिम्मत से बढ़े चलने का। महागुनस की ऊंची चोटी पर जबतक सब पहुंच नहीं गये, बादलों और बौछारों के बीच यह शिवाराधना निरंतर जारी रही। बीच-बीच में कभी सुधीर, तो कभी भाभी, कभी मैं तो कभी कोई दूसरा, 'अमरनाथ की जय' के नारे जोर से लगाते थे। हमारी यात्रा की यह बड़ी भयंकर घड़ी थी। मालक आगे या पीछे हो जाते तो मैं चिल्लाकर पूछता, "मालक, हाऊ आर यू ?" तत्काल सुनाई पड़ता, "क्वाइट वैल।"

इस प्रकार हमारी पार्टी आगे बढ़ती जा रही थी, लेकिन हम लोग मन में कुछ डर-से रहे थे कि विष्णुजी और ललिताबहन की पार्टी को आग्रह करके लाना ठीक हुआ या नहीं। ईश्वर न करे, कहीं कुछ हो गया तो बड़ी बदनामी पल्ले पड़ेगी।

विट्ठलजी ने कहा, "यह यात्रा खूब याद रहेगी।"

मैंने कहा, "ये सब बातें न हों तो यात्रा में मजा क्या आया !"

हमारी बात सुनकर पीछे से आते हुए विष्णुजी की आवाज सुन पड़ी, "वाह यशपालजी, फंसाया न आपने बुरी तरह। हमने पहले ही समझ लिया था कि आप अपनी आदत से बाज नहीं आवेंगे। देखिये, अब चल तो पड़े हैं, कहां पहुंचते हैं ? अमरनाथ या अमरपुरी ?"

मैंने कहा, "विष्णुजी, हम सब साथ हैं, हम-सफर साथी हैं। आप जहां जायंगे हम भी तो वहीं चल रहे हैं ?"

और मैंने पुकारा, "मालक, हाऊ आर यू ?" उधर से जवाब आया, "क्वाइट वैल।"

और सुधीर चिल्ला उठा—"बोलो, अमरनाथ महाराज की . . ."

सब लोग चिल्लाये, "जय !"

वर्षा बराबर होती रही। रास्ता इतना रपटीला हो गया कि कहीं-कहीं हाथ-हाथ भर टट्टुओं के पैर, उनकी पूरी सावधानी के बावजूद, आगे फिसल जाते थे। हम लोगों के दिल कांप उठते थे। अच्छा यह था कि कोहरे के कारण निचाई प्रायः बहुत साफ नहीं दीखती थी और उंचाई भी जब कभी ही सामने आती थी, पर स्थूल आंखों की इस विवशता के होते हुए भी सूक्ष्म आंखें तो बराबर भयंकरता को देख ही रही थीं। जैसे थका पथिक बार-बार अपने साथी से पूछता है कि ओ भाई, अभी कितना और चलना है, वैसे ही हम बार-बार अपने टट्टवालों से पूछते थे, "क्यों भाई, अभी कितनी चढ़ाई और है ?"

रोज के अभ्यस्त वे लोग कह देते थे, "अभी क्या है बाबूजी ! अभी तो आधे भी नहीं आये हैं।"

उनके लिए यह कह देना सहज था, लेकिन हमपर उसका क्या असर होता था, यह हमीं जानते हैं। हम तो यह सुनना चाहते थे कि बस चढ़ाई अब खत्म होने ही वाली है, भले ही चढ़ना चार मील और क्यों न बाकी हो !

प्रकृति का प्रकोप कहिए या कृपा, बारिश निरंतर जारी रही, पर हम लोग एक क्षण को भी कहीं नहीं रुके। सारा वायुमण्डल जितना गंभीर था, उतना ही निस्तब्ध। उस निस्तब्धता को भंग करने वाला 'जय शंभो' का स्वर बड़ा भला मालूम होता था। पूरे जोर से जब हम लोग 'अमरनाथ की जय' बोलते थे तो ऐसा जान पड़ता था कि भय को हम लोग कील डालेंगे, लेकिन चढ़ाई द्रौपदी के चीर की भांति बढ़ती ही जा रही थी, और हमारी सारी पार्टी चली जा रही थी, चली जा रही थी। इस सारे भय के वातावरण में भी सुधीर का टट्टू सबसे आगे था। कई बार मैंने तथा पार्टी के और लोगों ने सोचा कि हम लोग अपना टट्टू आगे कर लें, उससे कहा भी, लेकिन उसने हम लोगों की एक न सुनी और अपना टट्टू बराबर आगे ही रखा।

टट्टूवालों ने बताया कि यहां कुछ ऐसे फूल होते हैं, जिनकी खुशबू से आदमी को बेहोशी-सी हो जाती है, चक्कर तो बहुतों को आ जाते हैं, लेकिन हमने उनकी बात की ओर ध्यान न दिया। न हममें से किसी को ऐसा अनुभव ही हुआ। शायद जिस मुसीबत में से गुजर रहे थे, वही इतनी बड़ी मालूम दे रही थी कि दूसरी ओर ध्यान देने का औसान ही किसी को न रहा था।

लगभग पौन रास्ता इसी अवस्था में पार किया। उसके बाद कोहरा एक साथ दूर हो गया। हम लोगों ने सामने, पीछे और इधर-उधर देखा। ऐसा लगता था कि हम लोग किसी जादू के जोर से वहां पहुंच गये हैं। दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़, पहाड़ों के बीच गहरी खाई। खाई की तलहटी तक निगाहही नहीं पहुंचती थी। यहां एक विशेषता ने हम लोगों का ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट किया। इधर कोई भी दो पहाड़ एक रंग के न थे। कोई टूटे-सूखे पेड़ की तरह और उसके रंग का था तो कोई रेल के जले कोयले जैसा, कोई मटमैला, तो कोई कत्थई ! यह बड़ी विचित्र बात थी। जगह एक, वायुमण्डल एक, आकाश एक, सूर्य का ताप, सर्दी और बर्फ भी एक, लेकिन पर्वतों के नाना रूप और वर्ण हैं। प्रकृति की लीला अपरम्पार है।

चारों ओर विलक्षण दृश्य थे। पानी बंद नहीं हुआ था, पर उसका वेग कम हो गया था। बरसाती को सिर पर थोड़ा पीछे की ओर खींच कर इधर-उधर के ये दृश्य मजे से देखे जा सकते थे।

घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे ही हम लोगों के जूते, मोजे तथा धोतियां कीचड़ से लथपथ हो गई थीं। जाड़ा भी खूब था। कपड़े भीग रहे थे। टट्टूवालों की तो हमसे भी ज्यादा मुसीबत थी। उनको पैदल चलना पड़ रहा था। उनके पास अपने को बचाने के लिए छाते या बरसातियां भी न थीं। वे बुरी तरह भीग रहे थे। उनके फटे-फटाये जूते पानी में भीग कर और मिट्टी से सनकर

काफी भारी हो गये थे, फिर भी वे बिना एक शब्द मुंह से निकाले चुपचाप चल रहे थे। उन्हें देखकर मन में एक विचार बार-बार उठता था। इस शरीर को आदमी जैसा चाहे, बना सकता है।

राम-राम करते महागुनस की यह महान चढ़ाई पूरी हुई। ऊपर पहुंचे तो मालूम हुआ कि हम लोग लगभग १६,००० फुट की उंचाई पर पहुंच गये हैं। वहां एक पत्थर पड़ा था, जिस पर १४,७०० फुट लिखा था। रमजान ने बताया कि पत्थर पहले बहुत निचाई पर था, लेकिन बाद में वहां से उठा कर किसी ने यहां डाल दिया।

ऊपर पहुंचते-पहुंचते टट्टू पस्त हो गये थे। हम लोग भी थोड़ी देर को उनपर से उतर पड़े। फिर जो नीचे निगाह डाल कर देखा तो सहसा विश्वास नहीं हुआ कि उस भयंकर चढ़ाई को हम पार करके आये हैं। ऐसा लगा, मानो अमरनाथ की जयकार ने हमें आराम से लाकर उस जगह पहुंचा दिया।

रमजान ने कहा कि यहां से आगे निल नाम की एक प्रकार की घास मिलती है। उसे खाने से टट्टू फौरन मर जाता है; लेकिन यहां वाले टट्टू उसे पहचानते हैं। उस तक जाते नहीं। यात्रा के दिनों में नये टट्टू अक्सर धोखे में खा लेते हैं और मर जाते हैं।

चढ़ाई पार करते समय हमें बीच-बीच में पीले रंग के करन-फूल जैसे छोटे-छोटे फूल दिखाई दिए थे। रमजान ने बताया था कि उन्हीं की खुशबू से बेहोशी-सी होती है, लेकिन हम लोगों पर तो वैसा कुछ भी असर नहीं हुआ।

शिखर पर पहुंचकर अधिक नहीं रुके। पंचतरणी अभी पांच मील थी। भूख कड़ाके की लगी थी। झोले से निकालकर एक-एक, दो-दो बिस्कुटों और बादामों से मन बहलाया, फिर चल पड़े। अब पंचतरणी तक उतराई-ही-उतराई थी। चार-साढ़े

चार हजार फुट हमें उतरना था।

बादलों के कारण धूप का नामोनिशान न था। चारों ओर पहाड़ों पर बर्फ-ही-बर्फ दिखाई देती थी। कहीं बर्फ की मोटी-मोटी लकीरों को देखकर भ्रम होता था कि वे दूध की धाराएं हैं, कहीं नुकीली चोटी को बर्फ से ढकी देखकर ऐसा लगता था कि किसी ने उस पर चांदी का ख़ोल चढ़ा दिया है। अब भय मन से बिल्कुल निकल गया था और हम शांत भाव से प्रकृति की उस अनुपम छटा का आनंद ले सकते थे।

पेड़ों की भांति पक्षियों के भी यहां दर्शन नहीं होते। शेषनाग में कहीं से टिटहरी की-सी आवाज आई थी, लेकिन दिखाई कोई भी पक्षी नहीं दिया था। अपने जीवन में मैंने अनेक पहाड़ी स्थल देखे हैं, लेकिन इतना दुर्गम और इतना निर्जन स्थान मैंने अबतक नहीं देखा। प्रकृति का रूप यहां जितना अलौकिक था, उतना ही भयावना। चारों ओर वृक्षहीन, हरियाली-रहित पर्वत और सुनसान इतना कि अपने हृदय का स्पन्दन भी आप सुन सकें।

रात के जगे थे, चढ़ाई से थके थे, पर मन उमंग से भरा था। दुर्गम रास्ता पार कर चुके थे। बारिश थम गई थी। पंचतरणी के झोंपड़े दूर से नज़र आ रहे थे।

: १२ :

अंतिम पड़ाव

अब हम लोग जल्दी-से-जल्दी पंचतरणी पहुंच जाना चाहते थे, लेकिन महागुनस से आगे उतराई-ही-उतराई थी और रास्ता बहुत ही रपटीला था। हम लोगों को कदम-कदम पर अनुभव होता था कि अब गिरे, अब गिरे, पर भगवान की कृपा से कोई दुर्घटना नहीं हुई। हम सब साथ-साथ जा रहे थे। इस मुसीबत के

वक्त में मार्तण्डजी का टट्टू भी थोड़ी देर को अपनी शरारत भूल गया था।

आगे पहाड़ बिल्कुल नंगे थे, लेकिन दृश्य बड़े सुन्दर थे। यहां जैसी उपत्यकाएं पीछे कम ही मिली थीं। वस्तुतः इस यात्रा की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि दृश्य बराबर नये-नये दिखाई देते थे। जिस प्रकार चित्रपट में एक के बाद दूसरा, नया दृश्य आता है, वही हाल इस प्रवास में था। कोई भी एक दृश्य दूसरे से नहीं मिलता था। और क्या मजाल कि आप एक पर्वत को देखकर दूसरे की कल्पना कर सकें!

उंचाई के कारण महागुनस की चोटी पर सर्दी बहुत थी। हवा अब भी ठण्डी थी, लेकिन उतराई पर ठण्डक कुछ कम हो गई। पीछे के रास्ते की चर्चा करते हुए हम लोग आगे बढ़े जा रहे थे। अमरनाथ का जय-घोष अब भी जल्दी-जल्दी और अधिक ऊंचे स्वर में सुन पड़ता था।

रमजान ने बताया कि महागुनस की चढ़ाई वैसे ही बड़ी कठिन है, लेकिन वर्षा में तो वह बहुत ही खतरनाक हो जाती है। कभी-कभी बूढ़े या कमजोर आदमी जान से हाथ धो बैठते हैं। टट्टुओं का भी कभी-कभी दम टूट जाता है।

मैंने कहा, "रमजान, जिसको भगवान बचाता है, उसको कोई भी नहीं मार सकता।"

"यह तो है ही, बाबूजी।" रमजान बोला, "लेकिन हम लोग तो हमेशा देखते हैं कि यहां कितनी मुसीबत होती है।"

उतराई का यह रास्ता 'पोषपथ' कहलाता है। उसे पार करने के बाद तीन नाले आते हैं। तीनों का नाम एक ही है—केलनाड़। उनके पानी में बड़ा वेग था। दांई ओर बरफ का एक पर्वत आया। इधर रास्ते में एक घोड़ा मरा पड़ा था। रमजान ने कहा कि सर्दी के मारे अकड़ गया दीखता है। दो-एक दिन पहले कोई यात्री दल आया होगा, उसीका यह हो सकता है। उस ओर ज्यादा ध्यान

दिये बिना हम आगे बढ़ चले।

आगे नगारखां आया। वहां एक छोटी-सी चट्टान थी, जिसके चारों ओर ऊंचे-ऊंचे बरफ के पहाड़ थे। किसी ने बताया कि पहले यात्री यहीं तक आते थे और यहीं पर शिवलिंग के दर्शन होते थे। किसी ने यह भी कहा कि नगारखां अमरनाथ का पहरेदार था। टट्टू वालों ने नगार खां की जय बोली और हमसे भी बुलवाई।

अब पंचतरणी के घर साफ दिखाई देने लगे थे। उन्हें देख कर बड़ा सुख मिला। पानी बिल्कुल बन्द हो गया था। बादल भी साफ होते जा रहे थे। मन दौड़-दौड़ कर उन घरों तक पहुंच जाता था। जी होता था कि टट्टू हवा में उड़ जायं और वहां पहुंच जायं, पर वे तो अपनी ही रफ्तार से जा रहे थे।

पंचतरणी सिन्ध नदी के किनारे पर है। वहां नदी की पांच धाराएं हैं, जिनके कारण उनका नाम पंचतरणी पड़ा है। हम लोगों ने पहली धारा पुल से पार की। तीन धाराओं में थोड़ा पानी था। अन्तिम धारा काफी चौड़ी थी और पानी का बहाव भी उसमें बहुत तेज था। सुधीर सबसे आगे था। मैंने टट्टूवाले को आवाज दी और कहा कि बढ़कर उसके टट्टू की लगाम पकड़ ले, लेकिन टट्टूवाला पहुंचे, उससे पहले ही सुधीर ने टट्ट को पानी में छोड़ दिया। पानी टट्टू के पेट तक आया, कुछ और सोचें कि उससे पहले ही सुधीर आगे बढ़कर पार हो गया।

पंचतरणी ४।। बजे पहुंचे। भूख के मारे बुरा हाल हो रहा था, लेकिन खाने को साथ में कुछ था ही नहीं। सामान वाले टट्टू पीछे आ रहे थे।

पंचतरणी पहुंचकर हम लोगों ने ठहरने का स्थान देखा। छोटे-छोटे घुड़साल जैसे लंबे कमरे थे, जिनके ऊपर टीन थी, लेकिन फर्श कच्चे थे। ऐसे ही एक कोठे में अपना डेरा जमाया। उसके एक कोने में चूल्हा था, जिसमें किसी टट्टू वाले ने आग

जला रखी थी। हम लोग तापने लगे। अचानक हमने देखा कि मार्तण्डजी हमारी टोली में नहीं हैं। बाहर आकर दूर-दूर तक निगाह दौड़ाई, लेकिन दिखाई नहीं दिये। सब लोग चिन्ता करने लगे कि वह कहां रह गये? कहीं उनका टट्टू गिर-गिरा तो नहीं पड़ा? और कोई बात तो नहीं हो गई? थोड़ी देर राह देखकर रमजान को उन्हें खोजने वापस भेजा। कुछ समय बाद देखते क्या हैं कि हँसते हुए मार्तण्डजी चले आ रहे हैं? पहुंचकर उन्होंने बताया कि मैदान में जहां कुछ देर टट्टू चरने के लिए ठहरे थे वहां सब लोग तो उतर पड़े, पर वह टट्टू की पीठ पर बैठे-बैठे ऊंघने लगे। कुछ देर बाद और लोग तो अपने-अपने टट्टू पर बैठकर आगे चल पड़े। पर उनका टट्टू घास चरता रहा और वे ऊंघते रहे। थोड़ी देर बाद जब आंख खुली तो देखा कि टट्टूराम मजे में चर रहे हैं और सब साथियों का पता नहीं। साथ बिछुड़ जाने से घोड़े ने अपनी चाल और धीमी कर दी। वह उनके चलाये चलता ही नहीं था। वे घोड़े की पीठ पर से उतरे पड़े और उसे खींचते हुए लाने लगे। रास्ते में रमजान मिला और तब वह टट्टू को भगाता हुआ लाया।

टट्टूवालों ने बताया कि ऊपर भी कुछ कमरे हैं, जो अच्छे हैं। थकान के मारे चला नहीं जाता था, फिर भी ऊपर चढ़कर गये। देखा, एक लम्बा हाल-सा था, जिसमें एक ओर को अमरनाथ से लौटा एक परिवार भोजन कर रहा था, दूसरी ओर को वहीं के सरकारी मजूर खाना पका रहे थे। हमने उनसे कहा कि वे उस खाली करके नीचे वाले स्थान पर चले जायं तो अच्छा होगा। हम सब लोग एक साथ रह लेंगे, लेकिन वे लोग हमारी भाषा नहीं समझते थे। एक टट्टूवाले ने समझाया तो उन्होंने इन्कार कर दिया। तब लाचार होकर नीचे नदी-किनारे ही तम्बू खड़ा करने का तय किया।

आकाश अब एकदम निर्मल हो गया था और इतनी धूप निकली थी कि देखकर हृदय आनन्द से उछल पड़ा। वर्षा के बाद

धूप वैसे भी अच्छी लगती है, लेकिन यहां १२,००० फुट की उंचाई पर तो धूप का अपना महत्व था।

यह घाटी 'सिंध की घाटी' कहलाती है और प्राकृतिक सौंदर्य की खान है। चारों ओर पर्वत प्रहरी की भांति खड़े हैं और सिन्ध की धाराएं कलकल निनाद करती हुई इस शान से बहती हैं कि देखकर यात्री मुग्ध हो जाता है और रास्ते की थकान भूल जाता है।

लगभग आधा घंटे बाद सामान आ गया। हम लोगों ने तम्बू खड़ा करवाया और चटाई बिछवाकर बिस्तर खोल दिये। जो कपड़े बहुत भीग गये थे, उन्हें सुखाने डाल दिया। जूते धूप में रख दिये और मोजे भी उतार डाले। धूप से यों भी आराम मिल रहा था, लेकिन इतनी कठोर साधना के बाद मिलने के कारण उसका मूल्य कहीं अधिक बढ़ गया था।

विष्णुजी की पार्टी भी रात भर के लिए अपना घर बनाने में व्यस्त थी। सब लोग सही-सलामत पहुंच गये थे, इसका संतोष था। मुस्कराते हुए विष्णुजी घूम रहे थे। बोले, "यशपालजी, आप सबके भरोसे पहुंच ही गये यहां तक ! अब कल की यात्रा और बाकी है। अब तो मौसम बड़ा सुहावना हो गया है। कल भी ऐसा ही रहे तो बड़ा आनंद आवेगा।"

"कल इससे भी अच्छा हो जायगा। अमरनाथ की यात्रा को चले हैं, साहब ! पहले परीक्षा देनी होती है। वह तो हो गई और हम सब उसमें पास हो गये। किसी ने हिम्मत नहीं हारी। अब तो खा-पीकर विश्राम करें और सुबह भगवान का नाम लेकर अन्तिम मंजिल के लिए जल्दी ही निकल पड़ें।" मैंने कहा।

हम लोगों ने भी सब सामान जमा कर भोजन की तैयारी की। सबकी राय रही कि जो जल्दी तैयार हो जाय वह भोजन बने। चावल और पंचमेल साग ही संभव था और सर्वसम्मति से यही तय पाया गया। पूड़ियां साथ में थीं ही। पहले चाय बनी,

मेरे और भाभी के लिए काफी। फिर साग चढ़ाया गया। स्टोव जलाने की बहुतेरी कोशिश की, लेकिन सर्दी इतनी थी कि बार-बार स्पिरिट डालकर गरम करने पर भी उसकी नली गरम नहीं होती थी। काफी देर तक सिर खपाने पर भी वह नहीं जला।

अन्नदा ने बताया कि उसके सिर में बड़ा दर्द हो रहा है। थोड़ी देर में उसने कहा कि जी मिचला रहा है। कहने के कुछ ही मिनट बाद जोर की उल्टी हुई, बड़ी गंदगी निकली। खाने-पीने में कुछ ज्यादती हुई मालूम देती थी। दो बार उल्टियां फिर हुईं। हर बार गंदगी निकली। मैंने कहा, "चलो, पेट साफ हुआ।" लेकिन वह घबराती थी और कहती थी, "मुझे पहाड़ मत दीखने दो। पहाड़ देखकर चक्कर आते हैं।" उसे तम्बू में बिस्तर पर सुलाया और सामने का पर्दा बन्द कर दिया। विट्ठलजी ने उसके सिर में तेल की मालिश की। थोड़ी अमृतधारा दी। इस सबसे तबीयत काबू में आ गई। इस यात्रा में खाने-पीने का संयम बेहद जरूरी है।

चावल-साग तैयार हुए। दिन भर के भूखे तो थे ही, अच्छी तरह भोजन किया। हमारे निवास के निकट ही एक झरना था, जिसका पानी बड़ा अच्छा था। वहीं से लाकर पानी पिया।

खा-पीकर निबटे तो लगभग ८॥ बजे थे। आकाश में तारे बिछे हुए थे। उनके बीच चतुर्दशी का चन्द्रमा शोभायमान हो रहा था। दूध-सी चांदनी फैली थी। विट्ठलजी कुछ अधिक थकान अनुभव कर रहे थे। वह तो लेट गये। मार्तण्डजी, भाभी,आदर्श और मैं, बहुत देर तक बाहर नदी के किनारे टहलते रहे। रात का वह बड़ा ही अद्भुत दृश्य था। सामने का पहाड़ बर्फ और चंद्र-ज्योत्स्ना के कारण अकल्पनीय सौंदर्य से परिपूर्ण था। अन्य पर्वत भी हिममंडित थे। उनके मध्य पंचतरणी के थोड़े-से घर और चार-पांच तम्बू प्रकृति के साथ मानव की आत्मीयता का बोध करा रहे थे। सिंध बड़ी गंभीरता से बह रही थी। एक महापुरुष का कथन है—"जीवन में मैं केवल उन्हीं

क्षणों को स्मरण रक्खूंगा, जो उल्लास-पूरित थे ।" यह क्षण वास्तव में उन्हींमें से एक था । उसकी शोभा का वर्णन शब्दों द्वारा कर सकना संभव नहीं है । काफी देर तक हम लोग घूमकर उसका आनंद लेते रहे । ९॥-१० बजे के लगभग सो गये ।

शाम को एक घटना हुई । हम लोग चाय तैयार कर रहे थे कि एक बंगाली बहन अपनी बांह पकड़े हुए, बहुत घबराती-सी, आईं । मैंने पूछा, "क्या बात है ?"

बोलीं, "मैं टट्टू से गिर गई हूं ।"

"चोट तो नहीं आई ?" हम लोगों ने एक स्वर में पूछा ।

"शायद बांह में कुछ लगी हो ।"

वह सर्दी और सदमे से कांप रही थीं । मैंने एक तरफ को सरक कर अंगीठी के पास उनके लिए जगह कर दी । वह आकर बैठ गईं । तापने लगीं । कुछ देर में सुस्थिर हुईं । भाभी ने उनकी बांह पर विक्स लगाया और थोड़ी मालिश की । उसके बाद साड़ी के पल्ले को गरम करके उनकी बांह को जरा देर सेंका भी । जब उन बहन को इससे चैन पड़ा तो वह कहने लगीं, "आपने मेरी बड़ी सेवा की ।"

"बहनजी," भाभी ने कहा, "इसमें मैंने सेवा क्या की ? यह तो सबका कर्त्तव्य है—एक-दूसरे की मदद करना । अमरनाथ की बड़ी कृपा हुई जो आपके ज्यादा चोट नहीं आई !"

बड़े तड़के उठे । वैसा सुहावना प्रभात बहुत कम देखने में आया है । सूर्योदय हो रहा था और आकाश में बादल का एक टुकड़ा भी ढूंढे नहीं मिल रहा था । इतनी कठिन यात्रा के बाद सुनहरी धूपवाला वह प्रभात ! सब लोग मारे खुशी के उछल पड़े । कहने लगे कि अगर दिन भर ऐसा ही रहे तो यात्रा बड़ी सुन्दर रहेगी ।

हम लोग निबट-निबटा कर विष्णुजी की पार्टी में जाकर कुछ

देर तक विनोद करते रहे। तय हुआ कि हमें अब यहां देर नहीं करनी चाहिए। तैयार होकर झटपट चलना चाहिए, जिससे दर्शन करके जल्दी ही लौट आवें और भोजन करके वापसी की यात्रा शुरू कर दें। अमरनाथ यहां से केवल चार मील था। आने-जाने के आठ मील, वहां कुछ समय और फिर पंचतरणी से वायुजन के आठ मील। इस प्रकार सोलह मील का रास्ता शाम तक तय करना था और रात को वायुजन में ठहरना था। टट्टूवाले तो कल ही आग्रह कर रहे थे कि हम लोग थोड़ी देर विश्राम करके अमरनाथ चले चलें और दर्शन करके पंचतरणी लौट आवें, जिससे बड़े तड़के उठकर वापस चल पड़ें। लेकिन हम लोगों ने उनका यह प्रस्ताव नहीं माना। हम लोग थके हुए थे, फिर हमें लौटने की जल्दी भी क्या थी! टट्टूवाले चाहते थे कि उनका एक दिन बच जाय। प्राय: यात्री तीसरे दिन अमरनाथ से लौट जाते हैं, पर हम लोग चौथे दिन लौटनेवाले थे। श्री बसंतकुमार बिड़ला का ड्राइवर, कल सुबह ही पहलगाम से रवाना होकर रात को अमरनाथ के दर्शन करके पंचतरणी पहुंचा था। वह आज वापस पहलगाम पहुंच जाने वाला था। उसकी हिम्मत देखकर हम दंग रह गये।

सुबह काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। पहलगाम में मिले कई परिचित यात्री यहां मिल गये। वह डाक्टर भी मिले, जिन्होंने सुधीर को देखा था। और भी बहुत से स्त्री-पुरुष थे। सबको देखकर हर्ष हुआ। परदेस में जितने साथी हों, अच्छा है।

मार्तण्डजी को सांस की अब भी शिकायत थी। मुझे भी जोजपाल से कुछ ऐसा लग रहा था कि हवा में आक्सीजन की कमी ह। इसलिए जब-तब मुंह खोल कर गहरी सांस लेने की आवश्यकता पड़ती थी। रात को कुछ न खाने और हल्का पेट होने के कारण अन्नदा चंगी हो गई। सुधीर भी बिल्कुल ठीक था। हम लोग जल्दी-जल्दी तैयार हुए। जब से पहलगाम से चले थे,

नहाने की बारी अबतक नहीं आई थी। दाढ़ी बढ़ी थी, लेकिन उसके साथ न्याय करने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। अब तो एक ही अभिलाषा थी, जल्दी-से-जल्दी अमरनाथ पहुँचे।

जलपान कर रहे थे कि इतने में गुलाम नबी ने बताया कि हमारे चार टट्टू गायब हैं। वह बहुत परेशान था। उसने कहा, "कल एक आदमी से झगड़ा होगया था। उसीकी बदमाशी मालूम होती है।"

हमने पूछा, "अब क्या करोगे ?"

"आप फिकर न करें।" वह बोला, "आप सामान तो ले ही नहीं जा रहे ह। हम आपको चार लद्दू दे देंगे। जबतक आप लौटेंगे तबतक खुदा ने चाहा तो हम टट्टुओं को खोज निकालेंगे।"

एक चिंता फिर सवार हो गई।

: १३ :

साधना सफल हुई

जलपान करके अमरनाथ के लिए रवाना हुए उस समय ८ बजे थे। खूब सुहावनी धूप फैली थी। आज पूर्णिमा थी और यह आखिरी मंजिल थी। हृदय उल्लास और उमंग से उछल पड़ता था। रास्ते की थकान और परेशानी से पिछले दिन जो उदासी-सी छाई थी, वह दूर हो गई थी और उसका स्थान प्रसन्नता के वातावरण ने ले लिया था।

पंचतरणी से चले तो रास्ता नदी के किनारे-किनारे था, और शुरू में कठिन प्रतीत नहीं होता था। अमरनाथ केवल चार मील था और हम लोगों को ऐसा लगता था कि अब पहुंचे, अब पहुंचे, लेकिन वस्तुतः मंजिल उतनी सरल न थी।

थोड़ा आगे निकलने पर मार्तण्डजी ने आवाज दी। बोले, "जरा पीछे तो देखिये।" उस अलौकिक दृश्य को मैं अपने जीवन

में कभी नहीं भूल पाऊंगा। दो सूखे पर्वतों के बीच बर्फ से ढका एक महान पर्वत था, जो उस पर्वत-शृंखला का मुकुट-सा प्रतीत होता था। उसे देखते-देखते तृप्ति नहीं होती थी। मेरे पास केमरा था, पर सूर्य का रुख अनुकूल न था। अतः फोटो तो न ले सका, पर हम लोग आगे बढ़ते जाते थे और पीछे मुड़-मुड़कर उस अपूर्व दृश्य को देखते जाते थे। जी अघाता न था।

सिन्ध नदी काफी दूर तक साथ गई। रमजान ने कहा था कि पंचतरणी के बाद अमरनाथ तक बर्फ-ही-बर्फ मिलेगी। पंचतरणी से कुछ ही फासले पर हमें बर्फ पर होकर चलना पड़ा। रोमांच हो आया, पर टट्टुओं के कदम इतने सधे थे कि वे खटाखट पार कर गये। एकाध जगह दो-एक घोड़े कुछ फिसले भी, पर संभल गये।

पंचतरणी से कुछ आगे चलकर पहले भैरों घाटी आई। टेढ़े-मेढ़ेपन और ऊबड़खाबड़ के लिए हम लोग पिप्सूघाटी और कुट्टाघाटी तथा उंचाई के लिए महागुनस को भुगत चुके थे, लेकिन यह घाटी तो खतरे में सबसे बाजी मार ले गई। चढ़ाई आरंभ होते ही टट्टूवालों ने कहा, "अब आप लोग उतर पड़िये। टट्टू छोड़ दीजिए।" टट्टुओं पर बैठे-बैठे ही हम लोगों ने ऊपर जो निगाह डाली तो रोंगटे खड़े हो गये। इसलिए नहीं कि उंचाई अधिक थी, बल्कि इसलिए कि रास्ता बड़ा ही ढलवां और फिसलना था और पहाड़ बलुआ था।

ऊपर उंचाई पर कई यात्री जा रहे थे। वे और उनके पीछे चलने वाले टट्टू खिलौने जैसे प्रतीत होते थे। बनिहाल की घाटी जब हम लोगों ने पार की थी तब भी कुछ ऐसी ही अनुभूति हुई थी। दूर की मोटरें, खिलौने सरीखी लगती थीं और उनका नाम विनोद में सुधीर ने 'चाबी की मोटरें' रख दिया था। लेकिन दोनों में एक अंतर था। वहां हम लोगों की जान गाड़ी चलाने वाले ड्राइवर के हाथ में थी, लेकिन यहां तो अपनी जान की

जिम्मेदारी अपने पर या भगवान् पर थी। यहां मनुष्य स्वयं अपना ही चालक था, लेकिन रक्षक भगवान् था।

सिन्ध नदी अनासक्त भाव से बहती दीख पड़ रही थी। जाने कितने यात्री अबतक उस मार्ग से गुजर चुके हैं, जाने कितने आगे गुजरेंगे। उनकी घबराहट को देखकर यदि वह भी घबरा जाय तो कहां ठिकाना लगेगा! वह तो मानों कहती थी :

"आदमी आवें, चाहे जावें,
लेकिन मैं तो सदा-सर्वदा इसी प्रकार बहती रहूंगी।"

सच भी है। जीवन का अर्थ गति है, गतिहीनता का अर्थ है मृत्यु। धीर-गंभीर गति से बहती हुई सिंध यात्रियों को यही संदेश दे रही थी।

हम लोगों ने टट्टू छोड़ दिये, लेकिन हठी सुधीर नहीं माना। वह टट्टू पर से उतर तो पड़ा, लेकिन टट्टू को उसने नहीं छोड़ा। उसकी लगाम पकड़कर खींच कर ले चला। हम लोगों ने उसे समझाया, पर उसने किसी की एक न सुनी और आगे बढ़ता चला गया। हम लोग भी सावधानी से पैर रखते-रखते आगे बढ़ने लगे। मोड़ इतने अधिक और इतने ढलवां थे कि कहीं-कहीं दिल दहल जाता था। हम लोग ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते थे, नदी की उपत्यका उतनी ही गहरी होती जाती थी। नीचे देखने में डर लगता था। पठानकोट से जाते समय रामबन से आगे काफी दूर तक ऐसा ही रास्ता पड़ा था, लेकिन वहां की उंचाई और यहां की उंचाई में काफी अंतर था। दूने से भी अधिक का समझिये। यहां हम लोग करीब १२ हजार फुट पर थे।

हमारे हाथ में लाठियां थीं, जिनके नीचे लोहे की नुकीली कीलें लगी थीं, जो धरती में जम कर फिसलने से बचाने में सहायक होती थीं। उन्हीं के सहारे धीरे-धीरे हमारी टोली आगे बढ़ती जा रही थी।

बीच-बीच में रुककर हम लोग पीछे देख लेते थे। पंचतरणी

की वह हिममंडित मुकुट जैसी पर्वत-माला अब भी उतनी ही भव्य और आकर्षक दिखाई देती थी।

तीन-चौथाई घाटी पार कर पाये होंगे कि देखते क्या हैं कि सामने से एक सज्जन अकेले वापस आ रहे हैं। पास आकर देखा तो हम लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह तो पहलगाम में मिले वही डाक्टर थे, जिनके प्रोत्साहन ने हम लोगों को असीम साहस और बल प्रदान किया था और हमने यात्रा का निश्चय किया था।

हमें देखते ही डाक्टर मुस्कराये। उनका चेहरा बहुत ही थका था और शरीर भी शिथिल-सा हो रहा था। बोले, "हमारा तबीयत बहोत बिगड़ गया है। हम ऊपर नहीं जा सकता।"

मैंने कहा, "डाक्टर!"

वह बोले, "आप जायं! हम नहीं जा सकेगा। हमको हाईब्लड प्रेशर है। हमारा हार्ट (दिल) ....।"

उनकी विवशता को अनुभव करते हुए भी मैंने कहा, "डाक्टर, अब तो यात्रा का अंत है। थोड़ी हिम्मत और कीजिए।"

बड़े अनुराग से आभार प्रकट करते हुए डाक्टर ने कहा, "आप लोग जाइए और अच्छी तरह से दर्शन कीजिए।"

मेरी आंखें छलछला आईं। टोली के सब लोगों के हृदय विचलित हो गये। डाक्टर ठेठ दार्जिलिंग से आये थे, हजारों मील का रास्ता तय करके अमरनाथ के दर्शन करने; लेकिन इतने निकट आकर भी अमरनाथ के दर्शन से वंचित रह गये। उनके दिल में इसका मलाल अवश्य रहा होगा, पर उन्होंने प्रकट नहीं होने दिया।

हम लोग आगे बढ़े। इस घटना से मन भारी-सा हो गया।

ऊपर से कुछ यात्री और कुछ टट्टू आते हुए दिखाई दिये। रास्ता बहुत संकरा होने से हम लोगों को लगा कि टट्टुओं का जरा-सा धक्का लगा कि नीचे पाताल में पहुंचेंगे, लेकिन टट्टू

वालों ने एक सुविधाजनक स्थान पर उन्हें रोक लिया था, जिससे हम लोग निरापद निकल जायं।

जैसे-तैसे भैरों घाटी पार हुई। यह अंतिम घाटी थी। आगे उतार-चढ़ाव आये, लेकिन वे इतने खतरनाक न थे। हां, एक स्थान ऐसा अवश्य आया, जहां से गुजरते समय रोमांच हो आया। रास्ता छोटा-सा तो था ही। इसपर भी एक जगह एक बड़ा-सा पत्थर रास्ते में निकला हुआ था। उससे बचकर निकलने में मुश्किल से एक फुट रास्ता रह गया होगा। टट्टू का जरा-सा पैर टकराता या चूक जाता तो जो बीतती उसकी कल्पना सहज ही नहीं की जा सकती।

अब आगे बर्फ-ही-बर्फ दीख पड़ने लगी। अमरनाथ की घाटी, यहां से वहां तक फैली थी। दृश्य अपूर्व थे। प्रकृति हँसती थी। आदमी का दिल उल्लास से बांसों उछलता था। टट्टूवालों ने दूर एक पहाड़ की कंदरा की ओर इशारा करते हुए कहा, "वह ह अमरनाथ की गुफा।" हमने ध्यान से देखा, पर निश्चित स्थान का अनुमान न कर सके। फिर भी शरीर में स्फूर्ति आ गइ और ऐसा लगा कि टट्टू भी अब तेज चलने लगे हैं, मानो दर्शनों क लिए हमारी भांति वे भी आतुर हों।

रास्ते में यहां-से-वहां तक बर्फ बिछी थी। गैल बर्फ से ढकी थी और हम लोगों को कई स्थानों पर दूर तक बर्फ पर होकर गुजरना पड़ा।

सुधीर अपने टट्टू को तेज दौड़ाये जा रहा था। बीच में ललिताबहन की डांडी खाली चल रही थी। इसलिए कुछ दूर को सुधीर और कुछ दूर को अन्नदा उसपर सवार हो गये थे, लेकिन डांडी के लोग तो अपनी रफ्तार से चलते हैं, जब कि टट्टू की लगाम अपने हाथ में होती है। गति का उसमें अनुभव होता है। अतः थोड़ी देर बाद दोनों फिर अपने-अपने टट्टुओं पर सवार हो गये। ज्यों-ज्यों अमरनाथ निकट आ रहा था, सुधीर अपने

हाथ की पतली संटी से टट्टू को कभी मार कर तो कभी धमका कर अपनी तीव्रतम गति से चलने को बाध्य कर रहा था। उसके पीछे मैं था। बाद में शेष लोग। सभी को अमरनाथ पहुंचने की जल्दी थी।

हमारी टोली अब बार-बार 'अमरनाथ की जय' बोलती थी। भाभी या सुधीर एक साथ तेजी से चिल्लाते, "बोलो अमरनाथ की . . ."

और हम सब समवेत स्वर में कहते, "जय !"

पर्वतों के प्रति मेरे मन में हमेशा से आकर्षण रहा है। पर्वतों को देखकर मैं सबकुछ भूल जाता हूं और उनकी विराटता के आगे मेरा मस्तक नत हो जाता है। यहां पर्वतराज के दर्शन कर ऐसी धन्यता अनुभव होती थी, जैसी पहले शायद ही कभी हुई हो। पेड़ों का यहां भी नामोनिशान नहीं है, न कहीं बस्ती है, न कहीं आदम, न आदमजात। लगता है, जैसे सृष्टि के आदिकाल में पहुंच गये हैं, जब मनुष्य अकेला था, नितांत अकेला और निरुद्देश्य इधर-उधर भटका करता था।

जाने क्या-क्या विचार उस समय मन में आते और जाते रहे। समूची टोली उस भयोत्पादक विराट सौंदर्य से कुछ इतनी अभिभूत हो गई थी कि उसकी अभिव्यक्ति के लिए हमारे पास शब्द नहीं रह गये थे। नीचे मार्ग में बर्फ, पर्वतों पर बर्फ, ऊपर नीलाकाश, जिसके मध्य सूर्य दवता अपने पूर्ण वेग से चमक रहे थे।

: १४ :

जय अमरनाथ!

आखिर अमरनाथ पहुंच गये। सबसे पहले सुधीर पहुंचा। गुलाम नवी तथा उसका एक साथी सीधे रास्ते से निकल कर

वहां पहुंच कर हमारी राह देख रहे थे। अन्य अनेक यात्री भी वहां आ गये थे। कुछ गुफा में पहुंच गये थे, कुछ चढ़ाई पर थे।

गुफा से पहले कुछ गज दूर, अमरावती गंगा बहती थी। इसके जल में सफेद रंग की मिट्टी होती है, जो पवित्र मानी जाती है। यात्री उसे प्रसाद के रूप में साथ लाते हैं। इस नदी में यात्री स्नान करते हैं और तब अमरनाथ के दर्शन को ऊपर जाते हैं।

हमारी पार्टी में से मार्तण्डजी और भाभी ने अमर गंगा में हाथ-पैर धोये और आचमन किया। सरदी के डर से तथा पता न होने से साथ में कोई कपड़ा नहीं रखा था कि जिसे पहन कर स्नान करते। मार्तण्डजी ने बताया कि पानी पंचतरणी जैसा ठंडा नहीं था और अगर कपड़े होते तो मजे में नहाया जा सकता था। दो-एक पंजाबी और एक बंगाली महाशय स्नान कर रहे थे।

हम लोग टट्टू से उतर कर गुफा की ओर बढ़े। वैसे उंचाई अधिक नहीं थी, पर सांस उखाड़ देने वाली थी। बीच में सांस के लिए रुकते हुए हम गुफा में पहुंचे और वहां जो देखा, आंखें उस पर सहज विश्वास न कर सकीं। १२७२९ फुट की उंचाई पर इतनी विशाल गुफा की कल्पना कौन कर सकता था? गुफा की लम्बाई ५० फुट, चौड़ाई ५५ फुट और ऊंचाई ४५ फुट है। पहलगाम से यहां तक इतने पहाड़ मिले थे, लेकिन उनमें कहीं भी छोटी-बड़ी एक भी कन्दरा देखने में नहीं आई थी। तब किस अदृश्य शक्ति ने यहां इतनी विशाल गुफा का निर्माण करके उसे देश-विदेश के यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र बना दिया? कन्दरा की गोलाकार महराब को देखकर बड़े-से-बड़ा कारीगर भी आश्चर्यचकित रह जायगा। प्रकृति की इस महान कारीगरी के आगे मानव-कृति तो पानी ही भरेगी। कन्दरा का मुंह चौड़ा है। थोड़ी छत है। तत्पश्चात पीछे पत्थर की ऊबड़-खाबड़ दीवार-सी है। अंदर दायें कोने की दीवार में एक बड़ा गोल-सा कोना

है। कहते हैं कि इसी स्थान पर नीचे से उठकर शिवलिंग निर्मित होता है। उसके सामने एक ओर को पार्वती और उनके निकट गणेश की हिम-मूर्तियां बनती हैं । जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हम लोग वहां एक मास देर से पहुंचे थे। इसलिए शिवलिंग के स्थान पर बर्फ की एक समतल चौकी-सी दिखाई दी। पार्वती और गणेश की मूर्ति के स्थान पर भी थोड़ी-सी बर्फ पड़ी थी। हम लोग मुग्ध, आदर-भाव से उस समूची कला-कृति को निरखते रहे। एक बंगाली बहन बड़े ऊंचे स्वर में स्तुति-पाठ कर रही थीं और उनके कण्ठ के माधुर्य और भक्ति-विह्वलता ने वहां के वायुमण्डल को बड़ा ही पुनीत बना दिया था।

हम लोगों ने जूते बाहर ही उतार दिये थे, लेकिन जमीन में ठंड इतनी अधिक थी कि पैर सुन्न होने लगे। तब मार्तण्डजी और भाभी को छोड़कर, हम सबने रस्सी के जूते पहन लिये, जिन्हें हम पहलगाम से साथ लाये थे। फिर भी ऐसा जान पड़ता था मानो पैर कट जायंगे।

गुफा इतनी बड़ी है कि सैकड़ों व्यक्ति उसमें आसानी से ठहर सकते हैं। गुफा का ढाल ड्योढ़ी की ओर है और उसके ऊपर बहुत ऊंचा पहाड़ है। काश्मीर सरकार ने यात्रियों की सुविधा के लिए थोड़े-थोड़े फासले पर लोहे की एक रेलिंग बनवा दी है, जिससे दर्शनार्थी अच्छी तरह, बिना भय के यहां ठहर कर दर्शन कर सकें। गुफा के नीचे तथा दांए-बांए गर्मी में काफी बर्फ रहती है, लेकिन कहते हैं कि गुफा के ऊपर पर्वत पर बर्फ देखने में नहीं आती। छत में से टपटप पानी गिरता रहता है और शायद उसीके कारण ये हिमाकृतियां बनती हैं। यहां के पहाड़ एकदम सूखे हैं। उन पर हरियाली का नाम तक नहीं है।

शिवपिंडी ही अमरनाथ महादेव कहलाती है और इसीकी पूजा के लिए दूर-दूर से यात्री आते हैं। हमें बताया गया कि आषाढ़ का चन्द्रमा ज्यों-ज्यों पूर्ण होता जाता है, शिवलिंग बढ़ता

जाता है और श्रावणी पूर्णिमा को वह पूरा बन कर तैयार हो जाता है। अनंतर ज्यों-ज्यों चंद्रमा की ज्योति क्षीण होती जाती है, शिवलिंग भी घटता जाता है और अमावस्या के दिन वह बर्फ का समतल ढेर-मात्र रह जाता है। वस्तुतः संसार के महान आश्चर्यों में से वह एक है, क्योंकि बरसों से यह क्रम चला आ रहा है और कोई भी पता नहीं चला सका कि यह कैसे और क्यों होता है।

हमने सुन रक्खा था कि यहीं गुफा में कबूतरों की एक जोड़ी रहती है। दर्शन करने के बाद छत की ओर निगाह गई तो देखते क्या हैं कि एक छोटे-से हिस्से में दो कबूतर बैठे हैं। जहां जीवजन्तु का नाम नहीं, वहां दो कबूतर क्यों और कैसे रहते हैं, बहुत सोचने पर भी यह बात समझ में नहीं आई। जब वहां का रास्ता बंद हो जाता है, तब भी क्या ये कबूतर यहीं रहते हैं ? उस समय खाते क्या होंगे ? जहां शीत इतनी है कि सबकुछ जम जाता है, इनकी रक्षा कैसे होती होगी ? ये और ऐसे ही और बहुत-से प्रश्न मन में उठे, लेकिन उनका उत्तर कौन देता ! मानव-बुद्धि विलक्षण है और जहां कोई नहीं पहुंच सकता, वहां वह पहुंच जाती है; लेकिन कुछ ऐसे भी अवसर आते हैं, जब यही मानव-बुद्धि चमत्कृत हो जाती है और उसकी गति जड़वत् हो जाती है।

गुफा में सरनदास उदासीन नाम के एक साधु मिले। वह कम्बल का चोगा पहने थे और उनके सिर और दाड़ी-मूंछों के बाल बढ़े हुए थे। उनसे बातचीत होने लगी। उन्होंने बताया कि वह पंजाब से आये हैं और चार महीने से वहीं रहते हैं। मैंने पूछा कि आगे क्या विचार है ? बोले, "मैं पूरे साल यहां रहना चाहता हूं।"

"जाड़ों में भी ?"

"हां।"

"ठण्ड से कैसे बचेंगे ?" मैंने पूछा।

बोले, "मैं चाहता हूं कि कहीं से पचास मन कोयले का प्रबंध

हो जाय तो मैं बड़े आनंद से इस बार की सर्दी यहीं रह कर बिता सकता हूं ।"

मुझे विश्वास नहीं हुआ । जहां सितम्बर में ही इतनी सर्दी थी कि हाथ-पैर गले जाते थे, वहां जनवरी में क्या हाल होगा ?

बाबा सरनदास ने स्तुति-श्लोक बोले । हम सबने पूजा की और नारियल चढ़ाये । परिक्रमा की । परिक्रमा करने लगे तो मेरा हृदय गद्गद् हो गया ।

संत सरनदास से हम लोगों ने बहुत-सी बातें पूछीं, लेकिन वे अधिक कुछ नहीं बता सके । इतना उन्होंने अवश्य बताया कि जब से वह यहां आये हैं, कबूतर बराबर बने हैं और शिवलिंग उन्होंने पूरा देखा है । पार्वती और गणेश की मूर्त्तियों के भी उन्होंने बड़े भव्य रूप में दर्शन किये थे, लेकिन वह यह नहीं बता सके कि सबसे पहले कब और किस व्यक्ति ने इस तीर्थ की खोज की थी । टट्टूवाले ने बताया कि कोई मलिक नाम का मुसलमान था, जो सबसे पहले यहां आया था । यही कारण है कि चढ़ावे का एक हिस्सा मुसलमानों को जाता है । मलिक कब आया, इसका पता नहीं । कोई तीस साल से वहां टट्टू आने लगे हैं । पहले पैदल और दुर्लभ अवसरों पर डांडी में यात्रा होती थी । श्रावणी पूर्णिमा को प्रतिवर्ष यहां मेला लगता था, जिसमें हजारों नर-नारी आते हैं, वैसे तो आषाढ़ से लेकर क्वार तक यात्री आते रहते हैं । यात्रियों की संख्या हजारों तक पहुंच जाती है और टट्टू, डांडी तथा कुली भी हजारों की तादाद में वहां जाते हैं ।

टट्टूवालों ने यह भी बताया कि कबूतरों के अलावा इस हिस्से में कभी-कभी कौवा भी दीख पड़ता है, जिसकी जबान और पंख लाल होते हैं, शेष शरीर काला । कहीं-कहीं बिल्ली से कुछ बड़ा ट्रिन नाम का एक जानवर भी मिलता है, जो करीब बीस फुट गहरी जगह बना कर रहता है और अधिक बर्फ के दिनों में खाने के लिए घास जमा करके भीतर रख लेता है, पर हम लोगों

को तो उनमें से किसी के भी दर्शन नहीं हुए।

हम लोग गुफा पर कोई पौने दस पर पहुंचे थे। घंटे भर रहे। दृश्य इतना भव्य, शांत और मनोहारी था कि वहां से हटने की इच्छा नहीं होती थी, लेकिन टट्टू वाले जल्दी मचा रहे थे। बार-बार कहते थे कि धूप में बर्फ पिघलना शुरू हो जायगा तो मुसीबत हो सकती है। इसलिए बर्फीले रास्ते को जल्दी-से-जल्दी पार कर लें तो अच्छा है।

बाबा सरनदास हमें अपनी जगह पर ले गये, जो उन्होंने उसी गुफा में एक ओर को बना ली थी। उसमें उनकी आवश्यकता की थोड़ी-बहुत वस्तुएं संचित थीं। उन्होंने हमें प्रसाद के रूप में भस्म दी, जो उन्होंने नीचे नदी से लाकर वहां इकट्ठी कर रक्खी थी और कुछ किशमिश, मिश्री आदि का प्रसाद भी। आदमी मामूली जान पड़े। स्वस्थ भी अधिक नहीं थे। पता नहीं, वहां रह पायंगे या नहीं !

गुफा में थोड़ी देर और चक्कर लगा कर हम लोगों ने उसके प्रत्येक भाग को भली प्रकार देखा। उसकी विशालता का अनुभव कर बार-बार आश्चर्य होता था।

स्थान इतना शांत और वायुमण्डल इतना सुखद है कि यात्री रास्ते के सारे कष्टों को भूल जाता है। दुनिया का कोलाहल वहां नहीं है, वहां की निस्तब्धता और जनाकीर्णता में ऐसा कुछ है, जो आदमी के हृदय को सुख देता है और उसे उस कृतार्थता की अनुभूति कराता है, जो मनुष्य को अपने जीवन में बहुत कम अनुभव होती है। अंधविश्वासों में मेरी आस्था नहीं है और न हजारों-लाखों व्यक्तियों की भांति मुझमें अंध-श्रद्धा ही है, पर अनेक अवसरों पर अनुभव होता है कि जीवन में श्रद्धा बहुत बड़ी चीज ह और मानव को जितनी शक्ति विवेक से मिलती है, उससे कहीं अधिक बल कभी-कभी श्रद्धा से प्राप्त होता है।

हम लोगों ने एक बार फिर उस सारी गुफा पर निगाह डाली, हिम-पुंज को देखा, जय बोली और प्रणाम करके चल पड़े।

: १५ :

कैलास-दर्शन

गुफा से निकल कर बाहर आये और थोड़ी देर रुक कर गुफा को बाहर से देखने लगे। देखते-देखते हम लोगों की दृष्टि दूर, बहुत दूर, बांई ओर के एक पर्वत पर गई, जिसके ऊपर बर्फ-ही-बर्फ जमी थी और कई बादल के टुकड़े चक्कर लगा रहे थे। सूर्य की सुनहरी किरणों के मेल से वह दृश्य इतना सुन्दर लग रहा था कि हम लोगों की निगाह बरबस वहां टिक गई। हमें बताया गया कि वह कैलास है। भारत के महानतम तीर्थों में कैलास की गिनती होती है और बहुत-कुछ प्रयत्न करने पर भी कम ही लोग वहां पहुंच पाते हैं। उसके इतने भव्य रूप में दर्शन करके हृदय को बड़ा आनंद प्राप्त हुआ। हम लोग एक तीर्थ के दर्शन करने आये थे, दो के हो गये।

कैलास वहां से काफी दूर है और वहां जाने का रास्ता भी दूसरा है,लेकिन उसकी उंचाई दूर से ही यात्रियों को उसके दर्शन का लाभ दे देती है। श्रीनगर से गुलमर्ग जाते हुए रास्ते में बस से और फिर खिलनमर्ग पर पहुंच कर नंगापर्वत की हिमाच्छादित माला के दूर से ऐसे ही दर्शन हुए थे। लगता था, मानों वह माला हमसे कुछ ही दूरी पर हो। कैलास को देखकर भी यह नहीं लगा कि वह हमसे दूर है।

पर्वतराज हिमालय भारत का ही नहीं, विश्व का एक गौरव है। स्थान-स्थान पर उन्होंने बड़ी उदारतापूर्वक अपने सौंदर्य का दान किया है। कहीं से भी हिमालय के दर्शन कर लीजिये, आपका हृदय आनंद से गद्गद् हो जायगा। गंगोत्री जाइए, यमुनोत्री जाइए, बदरीनाथ जाइए, मान-सरोवर जाइए, अमरनाथ जाइए, केदारनाथ जाइए, एवरेस्ट

जाइए, कैलास जाइए, गिरिराज की भव्यता आपके हृदय को बिना मोहे नहीं रह सकती। उसके हृदय से जाने कितनी नदियां और प्रपात निकले हैं, उसकी गोद में जाने कितने प्रकार के वृक्ष खड़े हैं, उसके आंगन में जाने कितने पशु-पक्षी स्वच्छन्द विचरण करते हैं, उसके हिममंडित शिखर जाने कितने यात्रियों को वहां खींच लाते हैं। हिमालय निस्संदेह सौंदर्य, विस्मय और भव्यता का आगार है।

हम लोगों की दृष्टि कैलास पर से हटती नहीं थी। उसकी रमणीकता को देखकर मस्तिष्क किसी पुराने युग में चला गया था, जब शंकर भगवान वहां तप करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि अपनी साधना के अनुरूप ही उन्होंने उस स्थान का चुनाव किया था।

अलमोड़ा की ओर से कैलास लगभग २५० मील पड़ता है, लेकिन कहते हैं कि कोई हिम्मत करके इधर से सीधा जाय तो वह केवल ८० मील है।

कैलास के दर्शन कर मन में अनेक प्रकार के विचार उठे। भगवान राम ने अयोध्या को, कृष्ण ने ब्रज को, बुद्ध ने कपिलवस्तु को, महावीर ने कुण्डलपुर को और गांधीजी ने पोरबंदर को अमर बना दिया। भगवान शिव ने भी अपनी कठोर तपस्या से कैलास को भारत के लोकजीवन में वह स्थान प्रदान किया जो युग-युगान्तर तक अक्षण्ण रहेगा।

अमरनाथ की गुफा कुछ ही गज के फासले पर थी, कैलास मीलों दूर था, लेकिन ऐसा लगता था, मानो दोनों एक-दूसरे के पार्श्व में खड़े हों। दोनों का सौंदर्य अलौकिक था, दोनों के दर्शन से आंखें तृप्त नहीं होती थीं।

हम लोगों ने निश्चय किया था कि रात को वायुजन में ठहरेंगे। वहां पहुंचने के लिए हमें सोलह मील का मार्ग पार करना था। अनिच्छापूर्वक हमने बारी-बारी से अमरनाथ और कैलास

से विदा ली, अमरनाथ महादेव की जटा में से निकली अमरावती गंगा को प्रणाम किया, महिमामयी प्रकृति को सिर झुकाया और वहां की स्मृतियों की अमिट छाप हृदय पर लेकर वापस लौटे।

: १६ :

वापसी

अमरनाथ से चले तो हृदय इतना अभिभूत था कि वाणी मौन हो गई थी। टट्टुओं पर सवार होने के पूर्व हम लोगों ने खूब जोर से अमरनाथ का जयघोष किया था। उसके बाद वाचा मूक और दृष्टि आत्मस्थ हो गई। बोलने के लिए शब्द ढूंढ़ने पड़ते थे। लेकिन शीघ्र ही हम लोग सुस्थिर हो गये। अमरनाथ को जाते समय जिस सौंदर्य को पीठ-पीछे छोड़ गये थे, वह अब सामने था। अमरावती साथ-साथ चल रही थी। अमरनाथ की घाटी का नया रूप देखकर दिल बाग-बाग हो गया। जब हमारी टोली अपने-अपने टट्टुओं पर एक-एक करके बर्फ से गुजरी तो रोमांच हो आया। अमरनाथ जाते समय जब उसे पार किया था तो मन अमरनाथ पर केन्द्रित था, लेकिन अब वह बात नहीं थी और हम तटस्थ भाव से प्रत्येक दृश्य का आनंद ले सकते थे।

अमरनाथ की घाटी पार करते ही दूर से पंचतरणी का मुकुटधारी पर्वत दीख पड़ने लगा। मार्तण्डजी बार-बार कहते थे, "चित्र ले लो।" मेरी भी इच्छा होती थी कि लूं, लेकिन दुर्भाग्य से मेरा फिल्मों का स्टाक खत्म हो गया था और आखिरी बची फिल्म से अमरनाथ की घाटी का चित्र ले लिया था। मार्तण्डजी को इस बात का बड़ा खेद रहा कि हम लौटते में इन दृश्यों के चित्र न ले सके। मुझे भी बड़ा मलाल रहा, लेकिन हो भी क्या सकता था।

अमरनाथ से हम लोग ११ बजे के लगभग चले थे। भैरौं घाटी पर आकर एक रोमांचकारी घटना हो गई। जिस प्रकार खतरनाक रास्ते पर टट्टूवालों ने जाते समय टट्टुओं पर से हमें उतार दिया था, उसी प्रकार आते समय भी किया, लेकिन भाभी जब उतर रही थीं तो उनका पैर रकाब में उलझ गया। पहले उलझा, फिर रकाब में होकर दूसरी ओर निकल गया। अब वह एक पैर पर अपने भारी-से शरीर को साधने का प्रयत्न करने लगीं और उस प्रयत्न में उनका पैर और मुड़ने लगा। जगह वहां इतनी संकरी थी कि दो आदमी एक साथ मदद नहीं कर सकते थे। इधर उनका पैर उलझा था, उधर टट्टू आगे बढ़ने को उतावला था। तभी टट्टू वाले ने आगे बढ़कर टट्टू को रोका और जल्दी से रकाब के बंधन को ढीला कर दिया। रकाब नीची हो गई और पर आसानी से निकल आया। यह आशंका हो गई कि कहीं पैर में मोच न आ गई हो। रगड़ तो काफी आ गई थी, लेकिन चलने के उत्साह में भाभी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया।

हम लोग पंचतरणी लौटे तो मध्यान्ह का सूर्य सिर पर आ चुका था। गुलाम नबी से हम लोग जाते समय कह गये थे कि वह चावल और साग तैयार करके रक्खे। पूर्णिमा होने के कारण भाभी का व्रत था। उन्हें भोजन करना नहीं था। पंचतरणी पहुंचते ही भोजन तैयार मिला। अन्नदा ने पिछली रात खाना नहीं खाया था। इसलिए भूख के मारे चिल्ला रही थी। हम सब लोगों ने झटपट भोजन किया। सामान सबेरे ही बांधकर गये थे। पिछली रात को जो टट्टू खो गये थे, वे दूर एक पहाड़ के पीछे जाकर मिल गये। रमजान का कहना था कि जिस आदमी से उन लोगों का झगड़ा हो गया था, शायद उसी ने उन लोगों को हैरान करने के लिए टट्टुओं को पहाड़ के पीछे ले जाकर और पैर बांधकर छोड़ दिया था। रजमान कहने लगा कि पहलगाम पहुंचकर इस आदमी की शिकायत पुलिस में करनी होगी। आप वहां इस मामले में हमारी मदद करेंगे तो मेहरबानी होगी। हमने कहा कि इसमें

मेहरबानी की क्या बात है। हमसे जो हो सकेगी, वह मदद जरूर करेंगे।

टट्टू वालों ने तम्बू भी उखाड़कर बांध लिये थे। जो थोड़ा बहुत सामान, बर्तन आदि खुले थे, वे समेटे और टट्टुओं पर लाद कर चलने की तैयारी की। अब तो मन में यह था कि कब वायुजन पहुंचे और कब पहलगाम। इतनी भयंकर यात्रा की थकान तो होनी ही थी। मंजिल तक जाने में जोश रहता है, मंजिल पर पहुंचने के बाद थकान आती है।

पंचतरणी से अष्टनमर्ग और हत्यारा तालाब होकर एक और मार्ग है, जो चंदनवाड़ी पहुंचाता है, लेकिन १९२८ की दुर्घटना के बाद उसे बंद कर दिया गया। दुस्साहसी लोग ही अब उस रास्ते आते-जाते हैं। भयंकर होने के साथ-साथ वैसे वह बड़ा रमणीक बताया जाता है। जगह-जगह हरियाले मैदान आते हैं और कलकल-निनाद करते झरने मिलते हैं। इसलिए प्रकृति-प्रेमियों के लिए आज भी उस मार्ग का महत्व है। पंचतरणी से दो मील तक तो यही रास्ता रहता है। उसके बाद एक ओर को मुड़ जाता है। पांच मील चलने पर हत्यारा तालाब आता है। यहां १९२८ में बहुत से यात्रियों की मृत्यु हो जाने के कारण इसका नाम 'हत्यारा तालाब' पड़ गया। वह एक विशाल झील के समान है। उसके चारों ओर ऊंचे-ऊंचे हिमाच्छादित पर्वत हैं। यहां से थोड़ी चढ़ाई के पश्चात उतराई आती है। यह उतराई बड़ी कठिन बताई जाती है। कुछ आगे चलकर अष्टनमर्ग स्थान आता है। प्राकृतिक दृश्यों की दृष्टि से इस स्थान का अपना महत्त्व है। अष्टनमर्ग से चंदनवाड़ी कुल सात मील है। हम लोगों ने नये रास्ते का खतरा उठाना पसंद नहीं किया और परिचित मार्ग से ही लौटे।

महागुनस पहुंचकर हम लोगों ने टट्टू थोड़ी देर विश्राम करने के लिए छोड़ दिये। एक जगह बैठकर विनोद कर रहे थे कि इतने में विष्णुजी की टोली भी आ गई। सब साथ हो गये।

विष्णुजी बहुत प्रसन्न थे। ललिताबहन तो पहले ही से प्रफुल्लित थीं। उनकी टोली के शेष सदस्य भी खुश थे और खूब चहक रहे थे। उन्होंने बताया कि अमरावती गंगा में स्नान करके तब उन्होंने दर्शन किये थे। मैंने कहा, "आपने तो हम सबसे ज्यादा लाभ लिया।"

इधर से हम लोगों ने यह घाटी मेंह में पार की थी और कैसी मुसीबत हुई थी, यह पाठक पढ़ ही चुके हैं। अब मौसम एकदम साफ था। मुझे मजाक सूझा। मैंने चिल्लाना शुरू किया, "जयशंभो, जय शंभो!" सब लोग जोरों से हंस पड़े। सारा वायुमण्डल हँसी से गूंज उठा। इसी प्रकार विनोद करते और हँसते-हँसाते हम शाम को पांच बजे के लगभग वायुजन पहुंचे। वहां के रेस्ट हाऊस को पहले से ही रिजर्व करा लिया था, लेकिन वहां पहुंचकर देखते क्या हैं कि दो-तीन परिवारों ने उसके अधिकांश भाग पर कब्जा कर लिया है। एक छोटा-सा कमरा खाली बचा था। विष्णुजी और ललिताबहन ने आग्रह किया कि हम सब लोग साथ-साथ ही ठहरें। फर्श पर नीचे बिस्तर कर लेंगे। आखिर एक रात की ही तो बात है, लेकिन हम लोगों को वह ठीक न लगा। इसमें उन लोगों को बड़ा कष्ट होता, क्योंकि हम आठ जने थे और वे भी १०-११ जने थे। छोटे-से कमरे में गिच-पिच रहने की अपेक्षा खुले में रहने के खयाल से हम लोग दूसरी ओर बने बैरकनुमा मकानों में चले आये। वे थे तो बड़े गंदे। आखिर एक को पसंद किया और टट्टूवालों की मदद से उसे साफ कराया। फिर चटाइयां बिछाकर बिस्तर लगाये। सबसे पहले चाय का प्रबंध किया गया। उसके बाद भोजन का डोल जमा। सरदी तेज थी। पहले बता ही चुके हैं कि यहां हवा के कारण सर्दी कुछ अधिक होती है। अन्नदा जाड़े के मारे कांपने लगी। उसके लिए कांगड़ी में आग जलाकर दी और बाद में कांगड़ी को उसकी रजाई के भीतर रख कर बिस्तर गरम किया। भोजन बना, लेकिन खाया कुछ नहीं गया। १६ मील का थका देने वाला

सफर था। कुछ लोगों को उंचाई की वजह से सांस की तकलीफ फिर हो गई थी। भोजन से निबट कर सोने की तैयारी की।

इधर से जाते हुए घने कोहरे के कारण वहां की उस पर्वत-श्रृंखला के अच्छी तरह से दर्शन नहीं कर पाये थे, जिसकी तीन चोटियां ब्रह्मा, विष्णु और महेश के नाम से प्रसिद्ध हैं। अब लौटते समय सांझ हो चुकी थी। फिर भी बर्फ से ढकी उन तीनों चोटियों की धुंधली झांकी से ही मन उछल पड़ा। रात को ठीक से नींद नहीं आई। इस बार आदर्श को सांस लेने में ज्यादा कष्ट हुआ। रात में दो-तीन बार वह बाहर खुली हवा में सांस लेने गई। विट्ठलजी ने ठंड से बचाव का बढ़िया उपाय निकाला। रबड़ की थैली में गरम पानी भरकर बिस्तर में रखकर सो गये।

सबेरे उठे तो शेषनाग-झील पर उगते सूर्य का प्रतिबिम्ब बड़ा सुहावना लग रहा था और ब्रह्मा, विष्णु, महेश की चोटियां साफ दीख पड़ रही थीं। सब लोग निवृत्त हुए। चाय-नाश्ते की तैयारी शुरू हुई। रात को टट्टूवालों ने बताया कि अमरनाथ से लौटते हुए रास्ते में एक बहन टट्टू से गिर गईं। उनकी बांह टूट गई है। सबेरे उन्हें देखने गये। उनके साथ और भी कई लोग थे। बहन डांडी में बैठी थीं और उनके चेहरे पर बड़ी वेदना थी। संयोग की बात देखिये कि दार्जिलिंग के बंगाली डाक्टर यहां भी मौजूद थे और रात को ही आकर उन्होंने उन बहन को यथा-संभव प्राथमिक चिकित्सा एवं सहायता दे दी थी। सबेरे जब हम उन बहन के पास गये तो सामने उन्हीं डाक्टर को देखकर मेरा जी भर आया। सेवा के अवसर पर यह कैसे हो सकता था कि वह चूक जाते!

८ बजे तक हम लोग नाश्ता करके तैयार हो गये और आगे को चल दिये। सुबह का समय था। इसलिए कुछ दूर तक पैदल चले, फिर टट्टुओं पर सवार हो गये।

शेषनाग की झील वही थी, उसके चारों ओर हिमाच्छादित पर्वत वही थे, शेषनाग नदी उसी गति से बह रही थी, लेकिन अब उनका सौदर्य उतना आकर्षक प्रतीत नहीं होता था, जितना जाते समय लगा था। अमरनाथ के अद्‌भुत दृश्य आंखों में बसे थे न ! बर्फ पर चल चुके थे, तब दूर की बर्फ को देखकर अब क्या रोमांच होता ?

आगे कुट्टाघाटी आई। वहां बंगाली डाक्टर की टोली टट्‌टुओं से उतर गई थी और घाटी को पैदल पार कर रही थी, पर हम लोग टट्‌टुओं से नहीं उतरे। आगे चलकर एक दृश्य सचमुच ऐसा आया कि उसे देखकर रोमांच हो गया, सारा शरीर भय से कांप उठा। मालक अपने टट्‌टू पर बैठे चुपचाप घाटी में उतर रहे थे। अचानक एक मोड़ आया और उनका टट्‌टू एकदम रास्ते के बिलकुल किनारे रुक कर खड़ा हो गया। यदि दो इंच उसका पैर इधर हो जाय तो धड़ाम से नीचे शेषनाग नदी में। मालक का चेहरा फक। पीछे से आया सपाटे से मार्तण्डजी का उत्पाती टट्‌टू। मालक जानते थे कि वह मुंह मारने की अपनी आदत से बाज नहीं आता है। वह मूर्त्तिवत् बैठे-बैठे ही चिल्लाये, "मार्तण्डजी, अपने टट्‌टू को संभालना।" मार्तण्डजी ने पहले ही उस नाजुक स्थिति को देख लिया था और सावधान थे। उनका टट्‌टू भागता हुआ आया और मालक के टट्‌टू के पास से निकल गया। भगवान की दया से उसने अपना मुंह नहीं चलाया। जरा देर बाद मालक का टट्‌टू स्वयं ही आगे बढ़ गया। मालक ने और हम लोगों ने चैन की सांस ली। मैंने चिल्लाकर पूछा, "मालक, हाऊ आर यू ?" जवाब मिला, "क्वाइट वैल।"

जोजपाल पर आये तो रात के वर्षा और ओलों की याद करके शरीर एकबारगी सिहर उठा। कैसी बीती थी उस रात को ! लेकिन वह घटना अब कष्ट नहीं, मनोरंजन का विषय बन गई थी।

इतनी दूर बाद यहां फिर हरियाली देखने को मिली। परिवर्तन हुआ। आगे पिस्सूघाटी तक बराबर भोजपत्र का जंगल था। शेषनाग के किनारे के हरे-भरे दृश्य बड़े सुहावने लगे। अब दांई ओर के पर्वत सूखे थे, बांई ओर हरियाली-ही-हरियाली थी।

आगे चौपानों का मुकाम आया। भेड़ें आज भी बहुत बड़ी संख्या में थीं और उनमें से अधिकांश निश्चेष्ट-सी एक-दूसरे पर गर्दन टिकाये बैठी थीं। कुछ भेड़ें इधर-उधर मटर-गश्ती भी कर रही थीं। उनके बीच बड़े बालों वाला एक बकरा शान से खड़ा था। उस रेवड़ के एक ओर होकर हम लोग आगे बढ़ गये।

अमरनाथ से अबतक का मौसम बहुत अच्छा था, लेकिन अब कुछ-कुछ बादल होने लगे थे। हम लोग बार-बार यही मनाते थे कि कैसे ही जल्दी-से-जल्दी पहलगाम पहुंच जायं।

पिस्सूघाटी पर आकर टट्टुओं से उतर पड़े और सब लोगों ने निश्चय किया कि घाटी को पैदल पार करेंगे। गुलाम नबी ने बताया कि इस घाटी में भोजपत्र बड़ा अच्छा मिलता है। हमने कुछ भोजपत्र इकट्ठा करना चाहा तो रमजान ने कहा कि आप लोग आगे जाइए, आपके लिए कुछ भोजपत्र गुलाम नबी ले आवेगा।

आगे निकल जाने की इच्छा से सुधीर रास्ता छोड़कर नया रास्ता बनाकर चलता था। इस क्रिया में कभी-कभी उसे थोड़ा उंचाई से कूदना भी पड़ता था। इसमें डर था कि कहीं उसका पैर न फिसल जाय। हम लोग उसे रोकते थे, मगर वह उत्साह में किसकी सुनता था!

पिस्सूघाटी पार करते समय अचानक एक दम्पति मिल गये। युवा थे। टट्टू पर उनका पांच-छः वर्ष का बच्चा मजे में बैठा आ रहा था। वे दोनों पैदल ही चल रहे थे। हम लोग बातें करने लगे।

उन बहन ने पूछा, "आप पहली बार आये हैं ?"

"जी हां। और आप ?"

"मैं पहले मेले पर आई थी। अब दूसरी बार आई हूं।"

"बच्चा दोनों बार साथ रहा ?"

"जी हां।"

"इसे डर नहीं लगता ?"

"नहीं, यह तो यात्रा में बड़ा खुश रहता है।"

"आपको मेले के समय अच्छा लगा था या अब ?"

सुनकर बहन मुस्कराईं। बोलीं, "मेले पर भीड़ बहुत थी। पर देखने का इस समय अधिक अच्छा मौका मिला।"

मैंने कुछ आश्चर्य से पूछा, "इतनी कठिन यात्रा आपने दो बार कैसे कर डाली ?"

बोलीं, "मौका आवे तो तीसरी बार फिर कर सकती हूं।"

मैंने मन-ही-मन उन बहन के प्रकृति-प्रेम तथा धर्म-परायणता को शाबासी दी और बच्चे के साहस को सराहा। हम तो सुधीर के साहस से ही मन में फूल रहे थे, पर उससे तीन साल छोटे इस बालक का साहस तो और भी बढ़कर निकला।

घाटी में छोटे-छोटे कई प्रकार के फूल खिले थे। सुधीर ने बहुत से तोड़कर हाथ में ले लिये। बड़े अच्छे लगते थे।

बातचीत में घाटी पार हो गई। रास्ता मालूम भी न पड़ा। इधर से जब गये थे तो यही घाटी बड़ी भयंकर लगी थी और उसकी ऊबड़-खाबड़ता से टट्टुओं के गिर जाने की आशंका मन में रही थी। राम-राम करके चढ़े थे। आते समय मजे में उतर आये।

पिस्सूघाटी के बाद नदी के किनारे एक भोजपत्र का पेड़ मिला। हम लोगों ने उस पर चढ़कर अपने नुकीले डंडों से बहुत-सा भोजपत्र छुड़ाया और साथ में ले लिया।

अब हम लोग फिर टट्टुओं पर सवार होकर आगे बढ़े।

वही बर्फ का पुल आया, लेकिन उस ओर अब विशेष ध्यान न था। ठीक बारह बजे चंदनवाड़ी पहुंचे। पिछली बार की भांति आज भी यहां काफी भीड़भाड़ थी। मर्द-औरतें कहीं घास पर बैठे बातें कर रहे थे तो कहीं ताश खेल रहे थे। बच्चे किलकारियां मार रहे थे।

वायुजन से जब हम रवाना होने को थे तो हमें दो दुबले-पतले युवक मिले थे। उनके पास पहनने के कपड़ों के अलावा ओढ़ने-बिछाने को कुछ भी नहीं था। वे पैदल पहलगाम से चंदन-वाड़ी घूमने आये थे। उनमें से एक बहुत उत्साही था। उसने दूसरे को प्रोत्साहित किया तो दोनों आगे बढ़कर वायुजन पहुंच गये। वहां सर्दी के मारे दोनों का बुरा हाल हो गया। पहनने के भी पूरे कपड़े उनके पास न थे। आखिर दो और यात्रियों ने उन पर रहम खाया और उन्हें रात को ओढ़ने के लिए कुछ कपड़े दे दिये। उनमें से एक की सांस फूल रही थी और वह बार-बार वापस होने का आग्रह करता था। दूसरे का मन अमरनाथ जाने को था। हम लोगों को मालूम हुआ तो उनसे मिले। विट्ठलजी ने कहा, "आप लोग अच्छी तरह से अमरनाथ जाओ। जो चाहिए वे कपड़े हम से ले लो। हम तुम्हें दो लोइयां दिये देते हैं। इन्हें पहलगाम के गांधी आश्रम में लौटा देना।"

पर वे न माने। उनमें से एक कहता था, "मैं आगे हर्गिज नहीं जाऊंगा। मेरी तो तबीयत खराब हो रही है।"

दूसरा कहता था, "थोड़ी हिम्मत करके चले चलो। कौन यहां बार-बार आता है।"

आखिर में न जाने वाले की चली और वे दोनों वापस लौट आये।

पंचतरणी में सरदारजी के होटल के पास ही एक मदरासी महिला बैठी थीं। उनका सारा मुंह छिला हुआ था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह रास्ते पर खड़ी थीं। एक लद्दू टट्टू आया

और उनसे टकरा गया। वह तो अच्छा हुआ कि रास्ते पर ही गिर कर रुक गईं। कहीं जरा आगे को गिरी होतीं तो पाताल में पहुंचतीं।

ऊपर की सर्द हवा के कारण हम लोगों की नाक की चमड़ी गई फट थी और कुछ की माथे की। सारा चेहरा स्याह पड़ गया था। शक्ल-सूरत से हम लोग बिल्कुल दूसरे ही आदमी बन कर लौटे थे। घर के ही लोग मिल जाते तो देखकर हँसते।

चंदनवाड़ी में थोड़ी देर रुककर सरदारजी के होटल में भोजन किया। रोटियां, दाल, साग, सब ठीक थे, पर न जाने क्यों भोजन में वह स्वाद नहीं आया, जो अमरनाथ जाते समय आया था। खा-पीकर, पहलगाम पहुंचने की इच्छा से, तत्काल रवाना हो गये।

चंदनवाड़ी से पहलगाम आठ मील था। ज्यों-ज्यों हम लोग निकट आते गये, रास्ता भारी पड़ता गया। फिर भी कुछ दृश्य देखकर मन को बड़ी प्रसन्नता हुई।

५॥ बजे के लगभग हम लोग पहलगाम पहुंचे। सीधे गांधी आश्रम गये। श्यामलालभाई से मालूम हुआ कि उन्होंने हमारे लिए नदी-किनारे तम्बू तनवा दिया ह। टट्टुओं पर ही हम लोग अपने तम्बू पर गये। टट्टुओं से उतरे, उन्हें खूब प्यार किया। टट्टुओं के साथ टोली का एक चित्र खींचा और टट्टूवालों से हाथ मिलाकर और रमजान तथा गुलामनबी को छाती से लगा कर बिदा दी। चार दिन की इस कठिन और सदा याद रखने वाली यात्रा में ये टट्टू और टट्टू वाले हमारे परिवार के एक अंग-से बन गये थे। उनसे अलग होते समय मन को बड़ा दुःख हुआ।

इस प्रकार १० सितम्बर को प्रारंभ हुई यात्रा १३ की शाम को पूर्ण हुई। साढ़े तीन दिन में कुल मिलाकर ५६ मील हम लोगों ने टट्टुओं पर सवारी की। जीवन का वह अद्भुत अनुभव था।

: १७ :

अमरनाथ का धार्मिक महत्व

हमारा देश धर्म-परायण देश है। यहां की मिट्टी का कण-कण धार्मिक दृष्टि से पावन माना जाता है। भारत के छत्तीस करोड़ निवासी विभिन्न रूपों में अपने विश्वासों और धर्मों के अनुसार विभिन्न देवी-देवताओं तथा ईश्वर की पूजा करते हैं। धर्म यहां के लोकजीवन का सम्बल है। अमरनाथ के दर्शन के लिए सहस्रों बड़े-बूढ़े, कमजोर स्त्री-पुरुषों तक को खींच ले जाने वाली प्रेरक शक्ति भी उनकी धार्मिकता है। सैकड़ों-हजारों मील से लोग अनेक प्रकार की असुविधाओं और परेशानियों का सामना करके वहां पहुंचते हैं और अमरनाथ की धर्म-कथा को सुनकर गद्‌गद् हो जाते हैं। जबतक भारत का लोकजीवन सुरक्षित है, धर्म के प्रति यह निष्ठा बराबर बनी रहेगी।

यहां अमरनाथ की पौराणिक कहानी देना अप्रासंगिक न होगा। यह कहानी बड़ी रोचक है। इसमें न केवल शिव की महिमा बताई गई है, अपितु यात्रा किस प्रकार करनी चाहिए, रास्ते में कौन-कौन से पूजनीय स्थान पड़ते हैं, कथा सुनने का फल क्या है, आदि-आदि अनेक बातें बताई गई हैं।

कहते हैं, एक बार नारद मुनि कैलास पर्वत पर महादेव के पास गये। महादेव उस समय वन-विहार करने गये थे। पार्वती थीं। उन्होंने नारद को प्रणाम करके आदरपूर्वक आसन पर बिठाया और आने का कारण पूछा। नारद ने कहा, "हे पार्वती, मेरे मन में एक प्रश्न उठा है, जिसका उत्तर मैं आपसे चाहता हूं। कृपा कर यह बतावें कि महादेव सब देवों से बड़े हैं। उनके गले में रुण्डमाला क्यों है?"

पार्वती इसका उत्तर न दे सकीं तो नारद ने कहा, "महादेव से पूछिये।" इतना कहकर नारद अंतर्धान हो गये।

जब महादेव आये तो पार्वती ने नारद का प्रश्न पूछा। महादेव ने कहा, "यह प्रश्न मत पूछो।" लेकिन जब पार्वती का आग्रह हुआ तो उन्होंने बताया कि मेरे गले में जितने मुण्ड हैं, वे सब तुम्हारे ही सिर हैं। तुमने जितने शरीर धारण किये हैं उतने ही मुण्ड हमने धारण किये हैं।

इसपर पार्वती ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "इसका मतलब यह हुआ कि मैं मरती हूं और आप अमर हैं ?"

महादेव ने कहा, "तुम ठीक कहती हो। मैं अमर हूं और ऐसा अमरनाथ के कारण हुआ है।"

पार्वती ने कहा, "तो वह कथा मुझे भी सुना दीजिये।"

महादेव ने इस गुफा में आसन लगाया और कालाग्नि रुद्र नामक एक गण को बुलाकर चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कराई, जिससे पार्वती के अतिरिक्त और कोई भी उस कथा को न सुन पावे। दैवयोग से महादेव के आसन के नीचे एक तोते का अण्डा था, जिस पर गण की दृष्टि नहीं गई। महादेव एकाग्र-चित से अमरकथा सुनाने लगे और पार्वती सुनने लगीं। कथा सुनते ही अंडे में जीवन पैदा हो गया। उधर पार्वती कथा सुनते-सुनते सो गईं तो अंडे में से तोता उनके स्थान पर हुंकारा देता रहा। अमरकथा समाप्त होने पर महादेव ने पूछा, "तुमने कथा सुनी ?" पार्वती ने उत्तर दिया, "नहीं, मैं तो सो गई थी।" तब महादेव ने विस्मय से चारों ओर देखा कि यह हुंकारा कौन दे रहा था। तोता यह देखकर घबड़ा कर उड़ा। महादेव ने पीछा किया। तोते को त्रिलोक में कहीं भी स्थान नहीं मिला। भगवान व्यास की स्त्री अपने द्वार पर बैठी थीं। उन्होंने जमुहाई लेने के लिए मुँह खोला तो तोता उनके मुँह में होकर पेट में चला गया। महादेव ने व्यास से कहा कि हमारा चोर आपके यहां है। व्यास को कुछ पता न था। उन्होंने स्त्री से पूछा तो उसने बता दिया कि कोई पक्षी पेट में चला गया है। स्त्री को मारना पाप होता है। महादेव लौट आये।

कुछ समय बाद जब व्यास की स्त्री के पेट में बहुत पीड़ा होने लगी तो व्यास ब्रह्मा के पास गये और उन्हें साथ लेकर विष्णुजी के पास आये। अनंतर तीनों मिलकर महादेव के पास पहुंचे। चारों ने पक्षी की स्तुति की। अमरकथा के प्रभाव से वह पक्षी चारों वेद, अठारह पुराण आदि-आदि से पूर्ण ज्ञानी हो गया था। चारों की स्तुति सुन कर वह बोला, "जबतक यह जगत निर्मोही न होगा तबतक मैं बाहर नहीं आऊंगा।" विष्णु ने अपनी माया से जगत को निर्मोही बना दिया। पक्षी बालक के रूप में बाहर आया। उसका नाम शुकदेव हुआ।

उसी समय विष्णु ने अपनी माया समेट ली। जगत फिर मोही बन गया। व्यास व्याकुल होकर अपने पुत्र के पीछे दौड़े। शुकदेव ने कहा, "इस दुनिया में न कोई किसी का पुत्र है, न पिता।" व्यास ने कहा, "अब ऐसा नहीं है।"

शुकदेव ने ध्यान लगाकर देखा तो पता चला कि विष्णु ने उनके साथ छल किया है। उन्होंने दुखी होकर कहा, "मैं जबतक गुरु नहीं कर लूंगा, घर नहीं लौटूंगा।"

शुकदेव सब जगह घूमे, पर कोई भी उनसे बड़ा न मिला। तब पिता के सुझाव पर वह राजा जनक के पास गये। राजा जनक के पास उनकी स्त्री और उनके राजपाट को देखकर उन्हें ग्लानि हुई; लेकिन राजा जनक की माया से उसी समय सारा नगर अग्नि में भस्म हो गया। महल भी भस्म होने लगा। इतने पर भी राजा जनक और उनकी स्त्री का मन विचलित न हुआ। शुकदेव का चित व्याकुल होने लगा। उन्हें अमरकथा के सुनने और अमर होने का अभिमान था। राजा जनक ने कहा, "हमारा शरीर नश्वर है, जलेगा। पर तुम क्यों घबराते हो? तुम तो अमर हो।"

शुकदेव और भी व्याकुल हुए। राजा जनक ने उनकी व्यथा को देखकर अग्नि शांत कर दी। शुकदेव ने उन्हें अपना गुरु बनाकर उपदेश ग्रहण किया।

इसके पश्चात शुकदेव मुनि नैमिषारण्य गये। वहां उनका बड़ा आदर हुआ। ऋषि-मुनियों ने एकत्र होकर उनसे अमर कथा सुनाने की प्रार्थना की। शुकदेव ने उनकी प्रार्थना मानकर कथा कहना आरंभ किया। ज्योंही कथारंभ हुआ कि कैलास, क्षीर-सागर और ब्रह्मलोक हिलने लगे। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव दौड़े आये। महादेव को भय हुआ कि सारे लोग अमरकथा सुन लेंगे तो सृष्टि का संचालन रुक जायगा। इसलिए क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दिया कि जो अमरकथा को सुनेगा, वह अमर नहीं होगा, लेकिन शिवलोक को अवश्य प्राप्त होगा।

× × ×

पार्वती ने महादेव से कहा, "हे स्वामिन, मैं अमरनाथ-यात्रा का महत्व सुनना चाहती हूं। कृपाकर आप उसकी महिमा का वर्णन करें, यात्रा का मार्ग बतावें और यह भी कहें कि अमरनाथ का दर्शन करने वाला किस गति को प्राप्त होता है।"

महादेव ने उत्तर दिया—हे देवि, यात्रा दो प्रकार की होती है। एक ऊपर की, दूसरी नीचे की। ऊपर की यात्रा मोक्ष चाहने वाले योगियों को प्राणायाम से होती है। नीचे की यात्रा पादा-चार से। ये दोनों प्रकार की यात्राएं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के अभिलाषी पुरुषों को करनी चाहिए। इनसे पाप क्षय होकर चित्त शुद्ध होता है और व्यक्ति अमरकथा के सुनने का अधिकारी हो जाता है। यात्रा इस कथन के अनुसार शुरू हो। श्रीनगर में गणेश की स्तुति कर षोडश (शुराहुयार) तीर्थ पर स्नान तथा आचमन करके शिवपुर (पामपुर) पहुंचे, फिर सिद्धों के क्षेत्र पद्मपुर में और वारीश (वारसु) में रुद्रगानायक तीर्थ पर स्नान करके युवती, मिष्ठोदं (मिठबन्य) तीर्थों में होकर अवन्तीपुर जाय। वहां सिद्धों के क्षेत्र में स्नान कर महानाग जाकर हारीपारी गांव में हरिद्राख्य गणपति में होता हुआ बलिहार क्षेत्र पहुंचे। वहां से हस्तिकर्ण (नागाश्रम) के समीप ज्येष्ठाषाढ़ नामक

गणस्वामी का पूजन करे। फिर चक्रनामक तीर्थ होता हुआ देवक तीर्थ (देवकायर) जाय। वहां से हरिश्चन्द्र तीर्थ के दर्शन कर लम्बोदरी नदी में स्नान कर और थुजवारा ग्राम में महादेव की गुफा को देखता हुआ सूर्य क्षेत्र (मटन) के सूर्य-कुण्ड में स्नान कर (सूर्य मंदिर में) सूर्य भगवान के दर्शन करे। सूर्य-क्षेत्र अपने कर्मों से दुखी हुए पितरों के उद्धार के लिए उत्तम है।

इसके अनंतर सत्कार (सोकरस), भद्राश्रम, हयशीर्ष (सिलगाम), अश्वतरक्षेत्र, सरलक (सलर) होता हुआ बालखिल्य आश्रम (ख्यिलन) जाय। कहते हैं कि इस अंतिम तीर्थ में बाल-खिल्यनामक ऋषियों ने कठोर तप किया था। उसने प्रसन्न होकर विष्णु भगवान से वर मांगने को कहा। उनकी विनय पर विष्णु भगवान ने वहां गंगा को प्रकट किया और यह वरदान भी दिया कि प्रलय तक बालखिल्य तीर्थ पवित्र रहेगा।

इसके बाद मामेश्वर (मानसेश्वर) जाय। कहते हैं, एक समय महादेव गणेश को दोनों ड्योढ़ियों पर द्वारपाल बनाकर स्थलवाट चले गये। वहां थोड़ी देर ठहरकर खिल्यायन से ऊपर दंडक मुनि के आश्रम में जाकर विश्राम करने लगे। वहां देवता आये तो महादेव ने कहा—आगे मत बढ़ो। ये शब्द सुनकर गणेश पाताल से आये और उन्होंने भी यही शब्द कहे। उन्हें सुनते ही देव महादेव में विलीन हो गये। अतः यह ग्राम मामल नाम से प्रसिद्ध हुआ। महादेव ने गणेश से कहा अब तुम बहुत दिनों तक यहीं रहो और विघ्न-बाधाओं को दूर करो।

फिर मामलेश्वर के पास लम्बोदरी नदी में स्नान करे। एक बार कैलास पर्वत पर महादेव पार्वती को कुछ बातें बता रहे थे। किसी को न आने देने के लिए गणेश को द्वारपाल बनाकर खड़ा कर दिया था। इतने में इन्द्र त्रिपुरासुर से दुःखी होकर देव-ताओं के साथ आये। गणेश ने रोका। दोनों में युद्ध हुआ। इंद्र हार गये। क्रोध करने से गणपति को भूख-प्यास लग आई। उन्होंने

खूब फल खाये और गंगाजल पिया। उनका पेट निकल आया तो महादेव उन्हें लम्बोदर कहने लगे। गंगा सूख गई थी। महादेव ने डमरू से गणेश के पेट पर चोट की तो वह उनके उदर से निकलकर बहने लगी। तब से उसका नाम लम्बोदरी पड़ गया।

लम्बोदरी के बाद रंजिवन जाय। यहां राम, लक्ष्मण और सीता आये थे और मदमत्त राक्षसों को देखकर उन्हें पसीना आ गया था। उनके पसीने की बूंदें कुण्डों में गिरने के कारण वे पवित्र हो गये। पत्थरों पर चढ़ कर राम ने दैत्यों का अपने बाणों से संहार किया। राक्षरों का रक्त गिरने से वह पहाड़ रंग गया। राम के चरण-स्पर्श से पवित्र बना।

अनंतर नील नंगा में स्नान कर स्थाणुआश्रम (चंदनवाड़ी) की ओर प्रस्थान करे। एक बार महादेवजी का मुंह खेल में पार्वती के नेत्रों से लग गया, जिससे उनकी आंखों के अंजन का निशान मुंह पर हो गया। महादेव ने उसे गंगा में धोया। उसके कारण गंगा का जल नीलवर्ण हो गया और वह 'नील-गंगा' कहलाई। यह नीलगंगा पहलगाम से ६।। मील चंदनवाड़ी के रास्ते में है। किसी समय में कैलासवासी शिव दक्ष प्रजापति की पुत्री सती के वियोग में हिमालय पर कठोर तपस्या करने लगे। महेश्वरी बहुत दिनों तक उनकी सेवा करती रहीं, लेकिन महादेव अपनी तपस्या में लीन रहे। पार्वती चन्दन वाटिका में थीं। बहुत घबराईं। शिव चूंकि वहां निश्चल रूप से विराजमान थे, इसलिए वह स्थान स्थाणु-आश्रम कहलाया।

इसके बाद सरस्वती नदी आती है, फिर पेषण पर्वत (पिस्सू-घाटी)। एक समय देवता और असुर महादेवका दर्शन करने आये। पहाड़ पर चढ़ते समय उनमें होड़ लग गई कि देखें कौन पहले पहुंचता है। युद्ध होने लगा। असुर पराजित हुए। उन्हीं की हड्डियों का ढेर पेषण पर्वत (पिस्सूघाटी) है।

पिस्सूघाटी के ऊपर शेषनाग (सिसिर नाग) तथा वायु-

वर्जन (वायुजन) जाय। (इसकी कथा अध्याय १० में आ चुकी है।)

जब शेषनाग पर्वत पर इन्द्र ने राक्षसों को हैरान किया तो वे भाग कर हत्यारा तालाब में छिप गये और देवताओं को त्रास देने लगे। एक बार महादेव और पार्वती वहां से गुजरे तो पार्वती ने देवताओं का कष्ट दूर करने को कहा। महादेव के शाप से तालाब सूख गया।

इसके पश्चात् पंचतरंगिणी (पंचतरणी) के पांच प्रवाहों में स्नान करे। पूर्वकाल में एक बार शंभु यहां ताण्डव कर रहे थे। उनके जटाजूट ढीले हो गये और उनमें से पंचधारा वाली गंगा (पंचतरणी) प्रकट हो गई।

श्रावणी के दिन प्रातःकाल भैरों घाटी की यात्रा करते हुए उसकी चोटी डामरक पर पहुंचे और डामेश्वर भैरव का दर्शन करे।

हे, पार्वती इसके बाद अमरावती नदी में स्नान कर अमरनाथ का दर्शन करे।

यह कथा सुन कर पार्वती बोलीं, "हे स्वामी, अब मुझे यह बताइये कि महादेव गुफा में स्थित होकर अमरेश कैसे कहलाये ?"

महादेव ने कहा—जिस प्रकार सृष्टि की रचना हुई, उसी प्रकार देवताओं आदि की। दूसरों की भांति वे भी मृत्यु को प्राप्त होते थे। इसलिए वे महादेव के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि उन्हें मृत्यु से छुटकारा दिलवा दें। महादेव ने उन्हें सांत्वना देकर कहा कि मैं आपकी मृत्यु के भय से रक्षा करूंगा। महादेव ने इतना कहकर अपने सिर से चंद्रमा की कला को उतार कर निचोड़ा और देवताओं से कहा कि यह आपके मृत्यु रोग की उत्तम औषधि है। हे पार्वती, चन्द्रकला के निचोड़ने से जो अमृत-धारा निकली वह अमरावती नदी है। जो अमृतबिन्दु महादेव के शरीर पर पड़े वे धरती पर गिर कर सूख गये। वे भस्म के रूप में गुफा में हैं। वह रस कड़ा होकर लिंग रूप हो गया। उनके दर्शन से देवताओं

का मृत्यु-भय दूर हो गया। अब से मेरा अनादि लिंग-शरीर त्रिलोक में अमरेश के नाम से प्रसिद्ध होगा। देवता लोग अमरेश्वर भगवान के लिंग के दर्शन कर चले गये।

पार्वती ने पूछा, "हे देव, यह और बताइये कि कौन से शिवगण कबूतर हुए, क्यों हुए और कहां रहते हैं ?"

महादेव ने कहा——एक बार महादेव संध्या समय नृत्य कर रहे थे। उसी समय रुद्र-रूपी गण आपस में ईर्ष्या से 'कुरु-कुरु' करने लगे। महादेव ने देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने शाप दिया कि वे रुद्ररूपीगण दीर्घकाल तक कुरु-कुरु करते रहेंगे।

पार्वती ने पूछा, "अब कृपाकर इतना और बताइये कि यात्रा किस समय सबसे अधिक फलदायक होती है ?"

महादेव ने उत्तर दिया——हे पार्वती, यात्रा का सबसे अधिक पुण्य श्रावणी को मिलता है, क्योंकि महादेव ने अपना स्वरूप रक्षा-पूर्णिमा को प्रकाशमान किया था। हे देवी, काशी में लिंग-दर्शन व पूजन से दस गुना, प्रयाग से सौ गुना और नैमिषारण्य तथा कुरु से हजार गुना अधिक पुण्य देने वाला अमरनाथ का दर्शन और पूजन है।

: १८ :

देश-विदेश की दृष्टि में

अमरनाथ का आकर्षण चिरकाल से रहा है और अनेक महापुरुषों ने वहां की यात्रा की है। स्वामी विवेकानंद की जीवनी में उनके अमरनाथ-दर्शन के विषय में लिखा है, "तब वह महत्त्वपूर्ण कन्दरा पर पहुंचे, जहां उन्हें शिव के सान्निध्य का अनुभव हो रहा था। भावुकता से उनका शरीर सिहर रहा था। कन्दरा इतनी बड़ी थी कि उसमें एक गिरजा समा सकता था और ऐसा प्रतीत होता था, मानों शिव अपने सिंहासन पर विराजमान

हैं। तब शिव के प्रति भक्तिभावों से प्रदीप्त मुख लिये, भस्म रमाये, अंगोछा पहने उन्होंने कन्दरा में प्रवेश किया और घुटनों के बल झुक कर प्रणाम किया। उस समय के गांभीर्य और सहस्रों कण्ठों से मुखरित स्तुति-ध्वनि तथा हिम-लिंग की पवित्रता ने स्वामीजी को मुग्ध कर दिया। वे मूर्च्छित-से हो गये। उनके मन में एक गुप्त प्रकाश हुआ, जिसके विषय में उन्होंने कभी चर्चा नहीं की। केवल इतना बताया कि शिव ने स्वयं दर्शन देकर उन्हें अमरनाथ का वर प्रदान किया है, अर्थात् स्वेच्छा के बिना उनकी मृत्यु नहीं होगी। क्या यह वही नहीं हुआ, जो उनके गुरुदेव ने कहा था कि जब वह (विवेकानंद) यह जान जायंगे कि वह कौन हैं और क्या हैं, तब वह अपना शरीर त्याग देंगे ?"

बाद में उन्होंने अपनी एक यूरोपियन शिष्या से कहा, "लिंग स्वयं शिव थे। वहां भक्ति थी, केवल भक्ति। मैंने आज तक कभी इतना सुन्दर और इतना प्रेरणादायक और कुछ नहीं देखा।"

स्वामी रामतीर्थ के संबंध में 'राम-वर्षा' पुस्तक में लिखा है, "स्वामीजी यात्रा से लौटे तो उनके हृदय की शांति और पवित्रता की प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गई।"

भारत के अतिरिक्त विदेशों के भी अनेक पर्यटक वहां आये हैं और अब भी आते रहते हैं। एक अमरीकन यात्री ने लिखा है, "लिंग आश्चर्यजनक एवं अद्भुत था। एक इतर हिन्दू को भी लिंग के घटते-बढ़ते रहने के कारण इस प्राकृतिक वास्तविकता के सृजनकर्त्ता के सम्मुख सिर झुकाना पड़ता है।"

एक पुर्तगाली महिला तो अमरनाथ के दर्शन कर इतनी अभिभूत हो गईं कि उन्होंने लिखा, "मेरा अनुमान है कि मैं अपने जीवन में फिर कभी अमरनाथ जैसे पवित्र, शांतिमय और चिर-स्मरणीय स्थान को और कहीं नहीं देख सकूंगी।"

एक अंग्रेज यात्री का भी कथन सुन लीजिये, "वह विचार, जिसमें यात्री एकाग्र-चित्त होकर अपने सामान्य कामधंधे से

वंचित हो जाते हैं, और बर्फ के उन आकर्षक दृश्यों में लीन हो जाते हैं, जहां प्रकृति के बनाने वाले के हाथ पूर्णशक्ति के साथ दृष्टिगोचर होते हैं, कभी यात्रियों के हृदय को प्रभावित करने तथा उनकी आत्मा को उन्नति की ओर ले जाने में असफल नहीं हो सकता।"

एक दूसरे अंग्रेज ने लिखा है, "इसका कण-कण सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व का साक्षी है।"

'पंचतरंणी' में भी अमरनाथ का सुन्दर वर्णन आता है।

एक जापानी पर्यटक ने इन शब्दों में अपने उद्गार प्रकट किये हैं, "मैंने सारी दुनिया की सैर की, पर्वतों और वनों में विचरण किया, मगर काश्मीर में अमरनाथ की गुफा में जाकर हृदय को जो शांति मिली, वह कहीं नहीं मिली।"

: १९ :

'न्दीरो पुराये'

अमरनाथ से लौट कर दो दिन पहलगांव में रहे। नदी के किनारे हमारा तम्बू लगा था, श्यामलालभाई ने बिजली भी लगवा दी थी। विचार था कि एक सप्ताह वहां रहेंगे, पर विट्ठल-जी को जल्दी ही गोरखपुर लौटना था। इसलिए दो दिन में थकान मिटाकर और पहलगाम के असाधारण सौंदर्य का आनंद लेकर १६ तारीख को दोपहर बाद १। बजे की बस से श्रीनगर से रवाना हुए। चलते समय श्यामलालभाई, टेलरमास्टर, रम-जान, गुलाम नबी पहुंचाने बस के अड्डे पर आये। श्यामलाल-भाई बार-बार कहते थे कि कोई गलती हो गई हो तो माफ करना। गुलाम नबी की आंखें डबडबा रही थीं। रमजान कहता था कि आगे आप जरूर आवें और मुझे चिट्ठी लिख दें। हम लोगों का

श्रीनगर के निकट का मनोहारी मार्ग

दोनों ओर वृक्षों की पंक्तियां प्रहरी की भांति खड़ी हैं।

बनिहाल की घाटी
संसार का सबसे
ऊंचा रास्ता

वेरीनाग
झेलम का
उद्गम

शंकराचार्य
का मंदिर
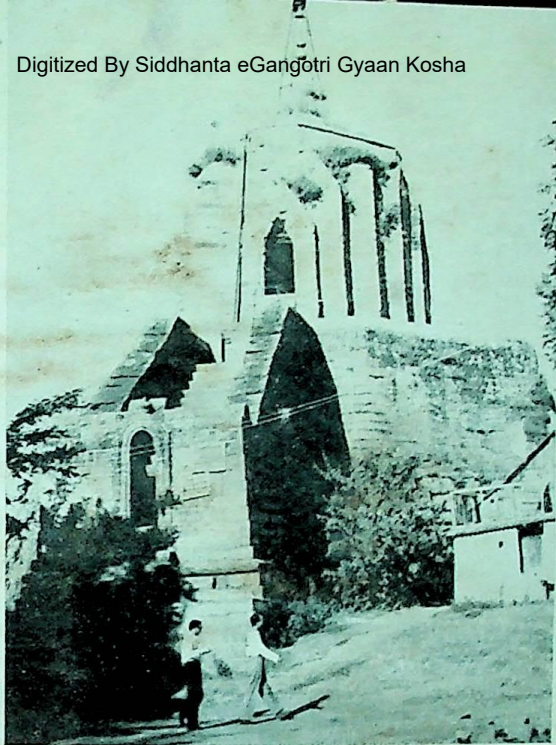
श्रीनगर
का
प्रमुख
बाजार

मटन तीर्थ का एक दृश्य
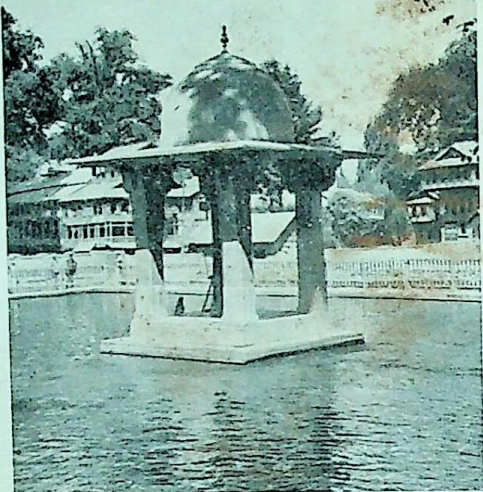
अवन्तीपुर के कलापूर्ण मंदिर के अवशेष
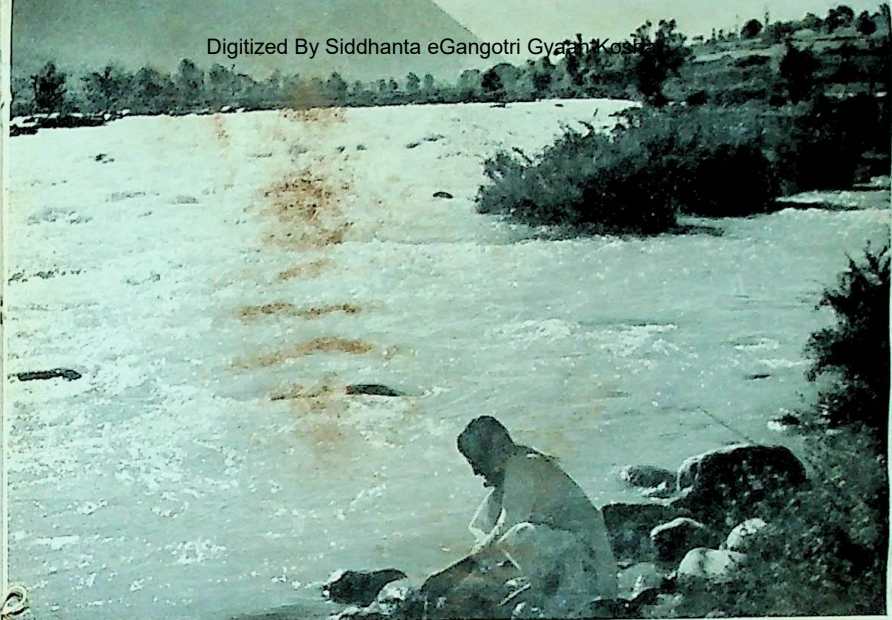
पहलगाम के रास्ते में लिदर नदी का एक दृश्य
नदी ने इस भूभाग को अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया है ।
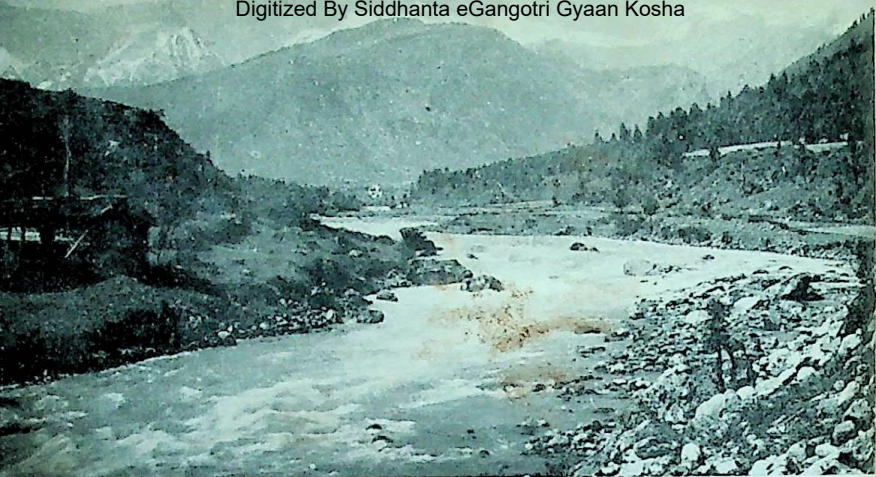
कलकल निनाद करती सतत-प्रवाहिनी लिदर

शाली (धान) के खेत

पहलगाम का एक दृश्य
अग्रभाग में लिदर की एक धारा

पहलगाम का बाजार

यात्रा के लिए
उद्यत हमारी
टोली

↗
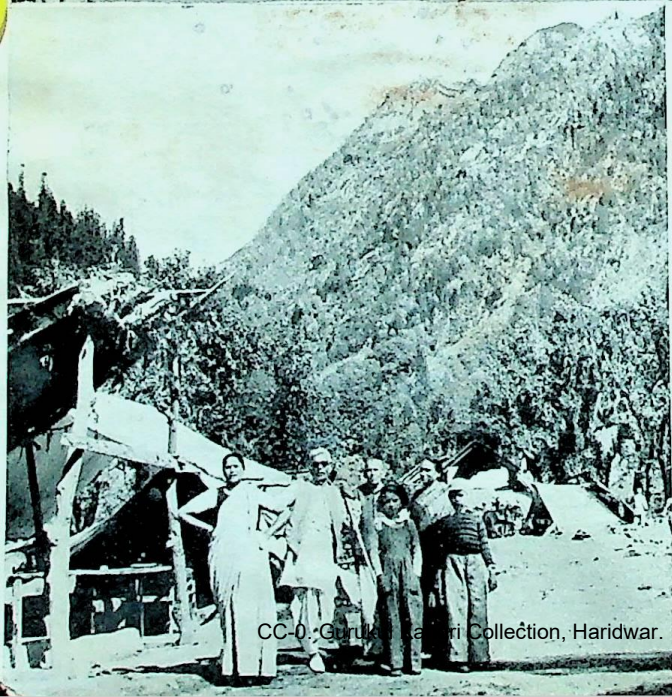
हिमाच्छादित
पर्वत

मार्ग का एक
मनोरम दृश्य
→

पहला पड़ाव
चन्दनवाड़ी

जोजपाल

वायुजन में हमारी संयुक्त टोली

शेषनाग की हिममंडित चोटियां–ब्रह्मा, विष्णु, महेश
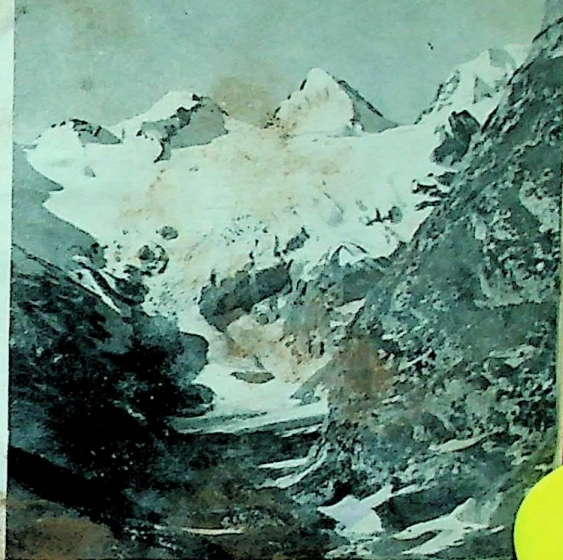
शेषनाग झील

→
कैलास-दर्शन

अमरनाथ की गुफा

गुफा में

→
बर्फ पार करती हमारी टोली
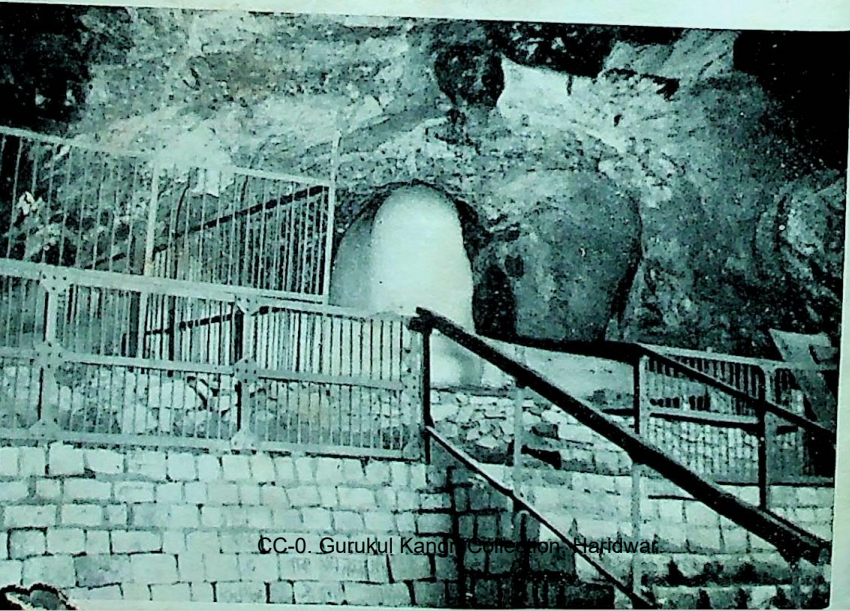
यात्रा से वापसी पर : पहलगाम में

पहलगाम गांधी-आश्रम के कार्यकर्त्ता

थोड़ा ही साथ रहा था, लेकिन इन लोगों की आत्मीयता ने हम लोगों के हृदयों को गद्गद् कर दिया। हमने सबके प्रेम के लिए आभार प्रकट किया, और यह आश्वासन देकर कि हम फिर आवेंगे, वहां से रवाना हो गये। लिदर नदी और घाटी का सौंदर्य बड़ा लुभावना प्रतीत हो रहा था और चिलकती धूप के कारण वह और भी आकर्षक जान पड़ता था, लेकिन समय की तंगी के कारण हमें उससे विदा लेनी पड़ी।

वहां से चल कर हम मटन पहुँचे। काशीनाथ पंडा ने कहा था कि वह वहां मिलेंगे, लेकिन नहीं मिले। मटन में थोड़ी देर रुककर उसके प्रपात का जल पीकर आगे बढ़े।

पहलगाम से कुछ बसें सीधी श्रीनगर आती हैं, कुछ रास्ते में इधर-उधर पड़ने वाले दर्शनीय स्थानों को दिखाती हुई आती हैं। उनमें सीधी आने वाली बसों की अपेक्षा किराया कुछ अधिक लगता है। हम लोगों का इरादा दर्शनीय स्थलों को देखते हुए लौटने का था, कारण कि इधर से हम लोग सीधी बस से गये थे और कई स्थान देखने से छूट गये थे।

मटन के बाद अनंतनाग पहुंचे। यह बहुत बड़ा नगर है। पहाड़ी की तलहटी में बसा है। यहां अनेक झरने हैं। यहां का दर्शनीय झरना 'मलखनाग' है। यहां पर दो कुण्ड हैं। गंधक का झरना है। अनंतनाग से ६ मील पर अच्छाबल है, जिसका निर्माण शाहजहां ने किया था। यहां पर एक सुन्दर उद्यान है, जिसमें झरना बहता है। बीच में एक बारहदरी है, जिसके इधर-उधर बहुत से फव्वारे उसके सौंदर्य में चार चांद लगाते हैं। यहां मत्स्य उद्योग अच्छी तरह से होता है। अच्छाबल से १० मील पर कुकरनाग है, जहां का जलवायु काश्मीर भर में सर्वोत्तम माना जाता है।

ये स्थान देखने में काफी समय लग गया। हमारी बस अब तेजी से श्रीनगर की ओर दौड़ी। रास्ते में शाली (धान) के खेत

दूर-दूर तक फैले थे, जिनमें काश्मीरी पुरुष-स्त्रियां काम कर रहे थे। डूबते सूर्य के प्रकाश में ये खेत बड़े अच्छे लगते थे।

कृष्णाबहन के यहां पहुंचे तबतक कुछ-कुछ अंधेरा हो गया था। कृष्णाबहन बड़ी खुश हुईं कि हम अमरनाथ की यात्रा कर आये और जब उन्होंने सारा हाल सुना तो वह और भी प्रसन्न हुईं कि यात्रा सानंद सम्पन्न हुई।

अगला दिन हम लोगों ने श्रीनगर के बगीचे देखने में बिताया। चश्माशाही, निशात, शालीमार सब देखे। बड़े, अच्छे लगे, लेकिन पानी की कमी के कारण उनमें विशेष रौनक नहीं थी। शालीमार के झरने और नहर तो एकदम सूखे पड़े थे।

१८ तारीख को विट्ठलजी हवाई जहाज से दिल्ली रवाना हुए। हम लोगों का जी नहीं माना। निश्चय किया कि चार-पांच दिन श्रीनगर और रहेंगे। विट्ठलजी को विदा करके बाजार में घूमते रहे। अगले दिन गुलमर्ग जाने के लिए सीटें बुक कराईं।

१९ तारीख को सबेरे ९॥ बजे बस से रवाना होकर टंगमर्ग पहुंचे। श्रीनगर से यह स्थान लगभग २८ मील है। बस यहां तक आती है। आगे टट्टुओं पर जाते हैं। हम लोग ११॥ बजे वहां पहुंचे और तत्काल टट्टू लेकर गुलमर्ग को रवाना हो गये। गुलमर्ग वहां से ३ मील है। ऊंचाई लगभग १० हजार फुट। स्थान बड़ा सुन्दर है। प्राकृतिक दृश्य अद्‌भुत हैं। अंग्रेजों के जमाने में यहां बड़ी चहल-पहल रहती थी, अब तो उजड़ा-सा पड़ा था। इसका एक कारण यह भी था कि यात्रा का मौसम खतम हो चुका था। गुलमर्ग के चारों ओर देवदार और चीड़ के घने वृक्ष हैं। मई से सितम्बर के शुरू तक यहां काफी भीड़-भाड़ रहती है। यहां का मैदान बड़ा विशाल है। उसमें लोग पोलो खेलते हैं। गुलमर्ग से ढाई-तीन मील पर खिलनमर्ग है। वहां पर्वत के शिखर पर एक विस्तृत मैदान है। वहां से नंगा पर्वत की हिमाच्छादित मालाएं बड़ी भव्य लगती हैं। यह स्थान बिल्कुल खुला है। ठह-

रने के लिए कोई भी जगह नहीं है। ऊपर थोड़ी दूर पर अलपत्थर झील है, लेकिन समयाभाव के कारण हम लोग खिलनमर्ग से ही लौट आये। शाम को सात बजे श्रीनगर पहुंचे।

अगले दिन काश्मीर के प्रधान मंत्री श्री गुलाम मुहम्मद बख्शी ने बुलाया। काफी देर तक बातचीत होती रही। उन्होंने बताया कि वह काश्मीर की चहुमुखी उन्नति के लिए कितने प्रयत्नशील हैं और वहां क्या-क्या काम हो रहे हैं।

२१ तारीख का सारा दिन सामान खरीदने में गया। २२ को चलने का विचार था। इसलिए एक ही दिन अपने पास था। बाद में बस के दफ्तर में गये तो पता चला कि २३ तारीख से पहले सीट नहीं मिल सकतीं। २३ तारीख की पहली बस से सीटें रिजर्व कराईं।

२२ तारीख का दिन काश्मीर एम्पोरियम देखने तथा इधर-उधर निरुद्देश्य घूमने में बिताया। शाम को बख्शी साहब ने अपने यहां भोजन करने बुलाया। अ० भा० समाचार-पत्र-सम्पादक-सम्मेलन की स्थायी समिति के अधिवेशन में आये हुए अनेक सम्पादक भी बुलाये गये थे। काश्मीरी संगीत का कार्यक्रम बड़ा अच्छा था। वहीं पर प्रथम बार काश्मीरी वाद्य देखे। रात को देर तक मनोरंजन होता रहा।

२३ तारीख को बड़े सवेरे तैयार होकर बस के अड्डे पर आये। कृष्णाबहन और रामसुमेरभाई की सास, माताजी, विदाई देने आईं थीं। सामान तुलवाया। बैठे-बैठे काफी समय बीत गया। कई बसें छूट गईं, लेकिन हम लोगों की बारी नहीं आई। हम बार-बार पूछते थे, पर एक ही जवाब मिलता था कि अभी लीजिए। होते-होते एक घंटा निकला, दो निकले, तब भी बारी न आई तो हम लोगों का धीरज छूटने लगा। एक भी बस शेष नहीं रही थी। तब मैनेजर ने एक ओर ले जाकर बताया कि हम लोगों ने रिजर्वेशन तो करा लिया था, लेकिन क्लर्क की गलती से आज के जाने

वाले यात्रियों के रजिस्टर में हमारा नाम लिखने से रह गया। अंत में आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा, "गलती हमारी है। हम भुगतेंगे और आपको सवारी देंगे, आप फिक्र न करें।" फिर राह देखी। ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता जाता था, अनिश्चित अवस्था की हैरानी बढ़ती जाती थी। जैसे-तैसे एक स्टेशन वैगन मिली। उससे रवाना हुए तो १०। बजे थे। मोटर में हम लोगों के अतिरिक्त एक यात्री और था। देर जरूर हुई, पर गाड़ी आराम की मिल गई। वैसे लेते तो उसके लिए बहुत रुपये देने पड़ते।

श्रीनगर से निकलते ही बादल घिरने लगे और आगे चलकर बूंदाबांदी शुरू हो गई। हम सब लोग थोड़ी देर तक चर्चा करते रहे, फिर मौन हो गये। मेरा मन बार-बार दौड़कर पीछे जाता था। कितना सुन्दर है यह देश। प्रकृति-रानी ने अपना सबकुछ यहां की भूमि और उस पर बसने वाले नर-नारियों पर न्यौछावर कर दिया है। यहां की नदियों, घाटियों, झरनों, पर्वतों, झीलों, बाग-बगीचों आदि ने इसे वह रूप प्रदान किया है, जो विश्व में अनूठा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टिकर्त्ता ने किसी बहुत ही उदात्त क्षण में इस भूप्रदेश का निर्माण किया होगा। प्राकृतिक सौंदर्य की वह खान है। पर...यह 'पर' क्या है, जो वहां की धवलता पर एक काला धब्बा लगा देती है ? वह है वहां की गरीबी और दैन्य, निरक्षरता और गंदगी !...ऐसा क्यों है ? इसके अनेक कारण हैं। शायद सबसे बड़ा कारण यह है कि गंदगी और गरीबी के प्रति वहां के मानव की चेतना लुप्त हो गई है।

"मुश्किलें इतनी पड़ीं हमपर कि आसां हो गईं।"

विचार-धारा जाने कहां-कहां दौड़ती रही। मोटर तेजी से अपने रास्ते पर चली जा रही थी। ड्राइवर बड़ा रसिक था। बीच-बीच में कुछ कह कर हम लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता था।

काजीगुण्ड से वर्षा प्रारंभ हो गई। हम लोगों को चिंता हुई

कि कहीं रास्ता खराब न हो जाय, पर ड्राइवर बेफिक्र था। कहता था कि ड्राइवरी मेरा पुश्तैनी पेशा है और सब मौसमों में गाड़ी चलाने का मेरा अभ्यास है।

काजीगुण्ड के आगे से जब चढ़ाई शुरू हुई तो बारिश और तेज हो गई, पर ड्राइवर पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। गाड़ी के शीशे उसने बंद करा दिये और मस्ती के साथ गाड़ी चलाता रहा। वर्षा के कारण दृश्यों की शोभा और बढ़ गई। पानी से धुल कर वृक्ष खूब हरे-भरे दीखने लगे। ऐसा लगता था मानों हम लोग किसी स्वप्न-लोक में यात्रा कर रहे हैं।

काश्मीर घाटी पार कर जब पीरपंचाल पहुंचे तो बादल बहुत ही घने हो गये थे। हम लोग सुरंग के निकट मोटर से उतर पड़े। ड्राइवर ने कहा कि देखिये, ऊपर से गिरने पर यहां क्या हाल हो सकता है। इतना कहकर उसने एक बड़ा-सा पत्थर नीचे लुढ़का दिया। हम लोगों के देखते-देखते वह चकनाचूर होकर नीचे पहुंचा। ड्राइवर ने बताया कि तनिक-सी असावधानी पर यहां ऐसा हो जाता है।

सुरंग से पार होकर हम लोग जम्मू घाटी में आ गये। हम पहले ही बता चुके हैं कि पीरपंचाल काश्मीर को दो भागों में बांट देती है। एक ओर जम्मू घाटी है, दूसरी ओर काश्मीर घाटी। जम्मू घाटी का अपना महत्व है, पर जो सौंदर्य काश्मीर घाटी में है, वह इसमें नहीं।

वर्षा होने के कारण रास्ता इतना रपटीला हो गया था कि कई अवसरों पर गाड़ी रपटते-रपटते बची। ड्राइवर बड़ा कुशल था। उसने संभाल ली। रामबन, बटोत, कुद, सब बारिश में पार किये। सर्दी खूब थी। कुद पर बरसते पानी में चाय पी।

जम्मू पहुंचे तबतक रात हो चुकी थी। वर्षा हो रही थी। यहां हमें यह गाड़ी छोड़ देनी थी। दूसरी से पठानकोट जाना था।

डाक बंगले में गाड़ी के रुकने पर हम लोगों ने स्थान की खोज

की। होटलों का चक्कर लगाया, लेकिन सब होटल भरे हुए थे। आखिर रघुनाथजी की धर्मशाला में दो कमरे लेकर सामान रक्खा। कमरे क्या थे, घुड़साल समझिये। पानी पड़ रहा था। धर्मशाला में टट्टियों की व्यवस्था नहीं थी। बड़ी परेशानी हुई, लेकिन आगे और जो मुसीबत आई, उसके सामने यह परेशानी गौण हो गई। वर्षा का वेग उत्तरोत्तर बढ़ता गया और कमरों की छतें जोरों से चूने लगीं। यहां तक नौबत आई कि दोनों में से किसी भी कमरे में तिल भर स्थान बिना पानी के न रहा। हम लोगों ने जब छतें चूनी शुरू हुईं तब कुछ स्थानों पर बर्तन रख-रख कर बचत करनी चाही, लेकिन कमरे का सारा फर्श जलमय होने लगा तो एक समस्या खड़ी हो गई। बिस्तर समेट-समेट कर हम लोग कमरों की परिक्रमा कर चुके थे। अब बिस्तर समेटे और उन पर बैठकर ऊपर छाते तान लिये। लेकिन उससे क्या बचाव होने वाला था ! सारी रात पानी पड़ता रहा और हम लोग उसका इसी प्रकार सामना करते रहे। एक ही सहारा था और वह यह कि सबेरे तो चल ही देना है।

बड़ी मुश्किल से रात कटी। एक क्षण को भी नींद नहीं आई। सबेरा हुआ। उठकर बस के अड्डे पर गया तो पता चला कि बारिश के कारण पठानकोट और श्रीनगर, दोनों ओर का रास्ता बंद है। उस समय मन पर क्या बीती, पाठक सहज ही अनुमान नहीं कर सकते। सड़क पर नहरें बह रही थीं और कमरे झील बन गये थे। हे भगवान्, दिन कैसे कटेगा ? और कौन जाने कि बारिश कब बंद होगी और रास्ता कब जाने योग्य होगा !

फिर होटलों में चक्कर लगाना शुरू किया, पर कहीं जगह खाली नहीं थी। पंजाबी धर्मशाला में गये, वह भी भरी थी। क्या करें, कुछ सूझता नहीं था। आखिर शाम को पता चला कि एक होटल में एक कमरा खाली है। हम लोगों को तो रात काटनी थी और क्या पता कि कितने दिन वहां रुकना पड़े ! जल्दी-जल्दी

सामान उठवाया। संयोग की बात देखिये कि सामान उठवा कर बाहर लाये तो पानी बहुत धीमा हो गया और ज्योंही होटल में पहुंचे कि फिर जोर से पड़ने लगा।

होटल में सामान रखकर जान-में-जान आई। रात भर के जगे थे, दिन भर के थके और हैरान थे, गरम पानी मंगवा कर खूब नहाये।

सारी रात पानी पड़ता रहा। अब हम लोग अपेक्षाकृत आराम से थे, लेकिन चिंता थी कि यही हाल रहा तो कई दिन जम्मू में पड़ा रहना पड़ेगा।

रात को खूब सोये। सबेरे उठकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि पठानकोट से गाड़ियां आने की सूचना मिली है। हम लोग उत्सुकता से उनके आने की राह देखने लगे।

८ बजे के करीब पहली गाड़ी आई। यात्रियों से मालूम हुआ कि रास्ता बिल्कुल साफ तो नहीं है, पर गाड़ियां जा सकती हैं। बस अधिकारियों से पूछा तो उन्होंने बतलाया कि वे गाड़ियां छोड़ने की व्यवस्था कर रहे हैं।

९-१० बजे के लगभग हमारी बस चली तब बूंदाबांदी हो रही थी। रास्ता वास्तव में कई स्थानों पर बहुत ही खराब हो गया था। पानी के बहाव ने सड़क को जगह-जगह काट डाला था। बहुत-सी जगहों पर बहकर पत्थर इकट्ठे हो गये थे, जिससे रास्ता ऊबड़-खाबड़ हो गया था। दो-एक जगह तो ऐसा लगा कि हमारी बस फंस जायगी।

राम-राम करते हुए दोपहर को १ बजे पठानकोट पहुंचे। निकल आये यह क्या कम बात थी। बाद में मालूम हुआ कि बारिश फिर जोरों से आई और लगभग एक सप्ताह तक रास्ता बंद रहा। हम लोग भी उस दिन न निकल आये होते तो शायद एक सप्ताह तक जम्मू में पड़ा रहना पड़ता। सामान प्लेटफार्म पर रखवा कर वेटिंग रूम में खूब अच्छी तरह से हाथ-मुंह धोया और

होटल में गरम-गरम ताजा भोजन किया।

शाम को ५।। बजे की गाड़ी से रवाना होकर २६ तारीख की सुबह ६ बजे दिल्ली पहुंच गये। इस प्रकार २३ दिन नंदनकानन में बिता कर मर्त्यलोक के प्राणी फिर मर्त्यलोक में आ गये।

इस चिरस्मरणीय यात्रा को हुए कई महीने बीत चुके हैं, लेकिन रह-रह कर काश्मीर की याद आती है, वहां के सुन्दर दृश्य आंखों के आगे घूमते हैं। अमरनाथ फिर जाने को जी करता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में आज भी "काश्मीर का स्वर्गीय जादूभरा नाद कानों में गूंज रहा है और उसकी याद दिल को सताती है। जो व्यक्ति उसके जादू में फंस गया है, वह उससे कैसे छुटकारा पा सकता है ?"

●

परिशिष्ट

: १ :

आवश्यक सूचनाएं और सामान

अमरनाथ की यात्रा वास्तव में वड़ी कठिन है और यात्रियों को यह सोच कर ही जाना चाहिए कि रास्ते में उन्हें काफी मुसीबतें उठानी पड़ेंगी। इसलिए अगर किसी में हिम्मत की कमी हो तो उसे जाने से पहले दस बार सोच लेना चाहिए।

दुर्बल या रोगी यात्रियों को पैदल जाने का खतरा नहीं उठाना चाहिए। वैसे वहुत से लोग पैदल जाते हैं और जो आनंद पैदल चलने में आता है, वह टट्टू पर अथवा डांडी में आ ही नहीं सकता। फिर भी चढ़ाइयां और उतराइयां इतनी अधिक हैं कि कमजोर या बीमार लोग रास्ते में ही हिम्मत हार सकते हैं। इसलिएं उन्हें अपनी स्थिति के अनुसार पहलगाम से डांडी कर लेनी चाहिए या टट्टू। रास्ते में कुछ भी नहीं मिलता।

ठहरने की व्यवस्था चंदनवाड़ी, वायुजन तथा पंचतरणी में है। ये सब स्थान एक-दूसरे से थोड़े ही फासले पर हैं। यदि अपने साथ तम्बू न हो तो इन्हीं स्थानों पर रात बिताना उचित होगा। रात को सर्दी इतनी अधिक होती है कि खुले में ठहरना जान को खतरे में डालना है। सर्दी के अतिरिक्त वहां कभी भी वर्षा हो सकती है। इसलिए ठहरने के संबंध में यात्रियों को पूरी सावधानी बरतनी चाहिए।

आने-जाने में ५६ मील का सफर होता है। भूख खूब लगती है। यात्री प्रायः अधिक खा जाते हैं। उसका परिणाम भी भुगतना पड़ता है। यात्रियों को चाहिए कि भूख से थोड़ा कम ही खायें।

अधिक बार खाना पड़े, इसमें बुराई नहीं है, लेकिन ठूंस-ठूंस कर खाने से तबीयत के खराब हो जाने का पूरा अंदेशा है। भोजन हल्का हो, यह भी जरूरी है।

निचाई की ओर बार-बार देखने या लगातार देखने में चक्कर आ जाते हैं। जहां तक हो सके, यात्रियों को अपनी दृष्टि चारों ओर रखनी चाहिए।

इस यात्रा में आदमी का सबसे उत्तम साथी टट्टू है। उसके ऊपर अपने को छोड़ दीजिये तो कोई खतरा नहीं है। टट्टू बहुत ही सधे हुए हैं और उन्हें दौड़ाया न जाय या उनके साथ उतावली न की जाय तो वे मजे में यात्रा करा सकते हैं। लेकिन बहुत से यात्रियों को धीरज नहीं होता। वे जल्दी-से-जल्दी अमरनाथ पहुंचना और लौट आना चाहते हैं। अपनी उतावली और अधीरता के कारण वे स्वयं धोखा खाते हैं और टट्टू के प्राण भी संकट में डालते हैं। यात्रा खूब मजे-मजे में करनी चाहिए।

पहले पड़ाव चंदनवाड़ी को छोड़कर आगे खाने को कहीं कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए भोजन की व्यवस्था पहलगाम से ही कर लेनी चाहिए।

सामान जितना अनिवार्य हो, उतना ही ले जाना उचित होगा। हमें एक सज्जन अपने साथ मेज-कुर्सियां, टी सेट, ट्रे, पलंग, कमोड आदि ले जाते हुए मिले, मानो वे पूरा दीवानखाना और रसोईघर सजाने जा रहे हों। इस यात्रा के लिए ऐसी चीजें अनावश्यक हैं।

शौचादि के लिए वहां खुले में जाना होता है। सर्दी के मारे यात्री दूर न जाकर पास ही बैठ जाते हैं। इससे गंदगी होती है और बाद में आने-वाले यात्रियों को बड़ी हैरानी होती है। बीमारी का भी डर रहता है। जहां तक हो सके, निवृत्त होने के लिए दूर निकल जाना चाहिए। उससे टहलने का टहलना हो जायगा, गंदगी भी नहीं होने पायगी।

जोजपाल से लेकर पंचतरणी तक हवा कुछ ऐसी है कि प्राय: यात्रियों को सांस लेने में कठिनाई होती है। उससे घबराना नहीं चाहिए। अच्छी नींद न आवे तो भी परेशान होने की जरूरत नहीं है। यात्रियों को टट्टू पर बैठने का अभ्यास न होने के कारण उन्हें थकान बहुत हो जाती है और इसलिए भी उन्हें नींद नहीं आती, या कम आती है। उसकी पूर्त्ति लौटकर पहलगाम में हो जाती है।

यात्रा में एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ बड़ी भयंकर चीज है। रास्ता बेहद संकीर्ण और ढलवां है। जरा-सा धक्का लगा या पैर फिसला कि फिर पता नहीं चलता। वहां चलने में जल्दबाजी या प्रतिद्वन्द्विता कदापि न होनी चाहिए।

जोजपाल तक तरह-तरह के पेड़ मिलते हैं। उन पर फल भी होते हैं। लेकिन बिना किसी जानकार से पूछे कभी कोई फल नहीं खाना चाहिए। न कोई फूल या जड़ी-बूटी सूंघनी या चखनी चाहिए। इनमें कई विषैली होती हैं, जिनसे मृत्यु हो सकती है या मूर्च्छा आ सकती है।

यात्रा के लिए सबसे अच्छा समय मौसम की दृष्टि से श्रावण और भाद्रपद के बीच का होता है, लेकिन जब भी यात्रा की जाय, यह देख लिया जाय कि पानी पड़ने का अंदेशा तो नहीं है। वर्षा और सर्दी, ये दोनों मौसम वहां के लिए अनुकूल नहीं हैं।

जितने सुमति और विनोदी स्वभाव के लोगों का साथ होगा, यात्रा उतनी ही आनंद-प्रद होगी। संगी-साथी का चुनाव सावधानी से करना चाहिए। अश्रद्धालु, डरपोक और बात-बात पर मुंह चढ़ाने या आंसू ढरकाने वाले साथी यात्रा का सारा आनंद मिट्टी कर देते हैं।

रास्ते में स्थान-स्थान पर झरने पड़ते हैं। उनमें बार-बार पानी पीना ठीक नहीं है। टट्टू वाले जानते हैं कि किन झरनों का पानी अच्छा है। इसलिए उनसे पूछकर या पहलगाम से पूरी

जानकारी लेकर पानी पीना चाहिए।

लौंग, इलायची, पिपरमेंट, अमृतधारा, लेमनचूस आदि जेब में रहने चाहिए। जी मिचलाने की शिकायत होने पर इनसे बड़ी सहायता मिलती है। सर्दी से बचाव के लिए थोड़ी-सी केसर का उपयोग भी लाभप्रद होता है। पेट हल्का रहे तो इनमें से किसी की भी जरूरत न पड़े। आकस्मिक चोट के लिए टिंचर आयोडिन और मरकरी क्रोम भी साथ रखने चाहिए।

टट्टू वाले अपनी बचत के लिए दूसरे दिन ही लौटने का आग्रह करते हैं। तीन दिन से अधिक तो लगने ही नहीं देते। इस बारे में अपनी सामर्थ्य देख लेनी चाहिए और उनकी जल्दी को नहीं मानना चाहिए। यात्रा जितनी मजे-मजे में की जायगी उतना ही आनंद आयगा।

यात्रियों की सुविधा और यात्रा की आवश्यक व्यवस्था के लिए पहलगाम में विजिटर्स ब्यूरो है। टट्टू, डांडी आदि तय करने में उसकी मदद ली जा सकती है, लेकिन ध्यान रहे कि ब्यूरो की मदद से टट्टू या डांडी सरकारी दर पर मिलते हैं, जो सामान्य दर से कुछ अधिक है। स्वतंत्र व्यवस्था की जाय तो पहले तय कर लेना चाहिए, जिससे बाद में झगड़ा न हो। दाम वहां बहुत बढ़ा-चढ़ाकर मांगे जाते हैं, यह भी ध्यान रखना चाहिए।

चलने से पहले यात्रा का साहित्य पढ़ लेना चाहिए, जिससे सब चीजें अच्छी तरह से देखी जा सकें और कुछ छूटे नहीं।

महिलाओं को साड़ी पहनकर टट्टू पर बैठने में असुविधा होती है। इसलिए उन्हें सिलवार, पतलून या पाजामे की व्यवस्था रखनी चाहिए।

ओढ़ने-बिछाने के कपड़े अपनी आदत के अनुसार लिये जा सकते हैं, पर हमारा अनुमान है कि बिछाने के लिए एक गद्दा और ओढ़ने के लिए एक रजाई या तीन-चार कम्बल होने ही चाहिए।

पहनने के लिए कुरतां-कमीज या धोती-पाजामे का एक

अतिरिक्त सेट काफी होगा। पूरी बांह का एक स्वेटर, कोट, ओवरकोट, मफलर, सिर में सर्दी लगती हो तो टोपा, गरम मोजे, दस्ताने, गरम पाजामा या पतलून और मजबूत जूते होने चाहिए। यदि कोई अमरनाथ पर स्नान करके कपड़े न बदलना चाहें तो जो पहनकर जायं वही कपड़े तीन दिन काम दे सकते हैं। जितना बोझ कम हो, अच्छा है।

पड़ावों पर ठहरने की व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं है। छत की टीनों में इतने छेद हैं कि अंदर बैठ कर आसमान के तारे देखे जा सकते हैं। अतः हो सके तो साथियों की संख्या के अनुसार एक-दो तम्बू पहलगाम से किराए पर लेकर चलना चाहिए।

भोजन की चीजों में चावल, हरी सब्जियां, फल, घी, मसाले आदि ले लेने चाहिए। पकाने के बर्तन, एक अंगीठी, कोयला, भी जरूरी हैं। बहुत से यात्री तीन दिन का खाना बनवा कर पहलगाम से साथ ले जाते हैं। यह ठीक नहीं है। बासी भोजन से सुस्ती आती है और कभी-कभी तबीयत भी बिगड़ जाती है।

चाय पीने की आदत हो तो चाय, चीनी और जमे दूध का एक डिब्बा साथ रख लेना चाहिए। सूखी मेवा—बादाम, किशमिश, अखरोट, काजू जरूर साथ होने चाहिए। टार्च, लालटेन, मिट्टी का तेल, मोमबत्ती, दियासलाई भी जरूरी है।

सर्दी और धूप के कारण चेहरे, विशेषकर नाक और माथे की चमड़ी उधड़ जाती है। उसके बचाव के लिए वैसलीन की एक शीशी रक्खें और रात को सोते समय मुंह पर जरूर चुपड़ लें।

पैदल चलने में सहारे के लिए पहलगाम में लाठी मिलती है, जिसके नीचे लोहे की नुकीली कील रहती है। उससे चढ़ाई पर बड़ी मदद मिलती है और फिसलन में रुकावट होती है। प्रत्येक यात्री के लिए एक-एक लाठी अवश्य ले लेनी चाहिए। बरफ पर चलने में तो वह बहुत ही काम आती है।

हर यात्री के लिए एक टट्टू सवारी का आवश्यक है।

सामान के लिए जरूरत के हिसाब से कई यात्री मिल कर व्यवस्था कर सकते हैं। सरकारी दर से १७॥) में सवारी का टट्टू मिलता है, १५)में लद्दू। इसमें आना-जाना दोनों शामिल हैं। डांडी ८०-८५) में होती है।

यदि सर्दी अधिक हो तो थोड़ी-सी ब्रांडी भी साथ रक्खी जा सबती है।

इस दुर्लभ यात्रा की स्मृति को स्थायित्व देने के लिए एक अच्छा-सा कैमरा जरूर साथ होना चाहिए। पहलगाम से अमरनाथ तक आने-जाने में सैकड़ों दृश्य ऐसे आते हैं,जिनके चित्रलेने चाहिए। फिल्में जितनी अधिक हों, अच्छा है। हम लोगों के पास फिल्में कम होने के कारण बहुत से सुन्दर दृश्य छूट गये। रास्ते में फिल्में मिलती नहीं। यात्रियों को चाहिए कि कम-से-कम एक दर्जन फिल्में इस यात्रा के लिए साथ में जरूर रक्खें।

: २ :

अमरनाथ : एक निगाह में

स्थान	फासला	ऊंचाई
१. श्रीनगर		५३०० फुट समुद्र तट से
२. अनंतनाग	३४ मील	५२४० ,, ,, ,,
३. पहलगाम	२५ मील	७२०० ,, ,, ,,
४. चंदनवाड़ी	८ मील	९५०० ,, ,, ,,
५. शेषनाग	७ मील	११,७३० ,, ,, ,,
६. वायुजन	१ मील	१३,००० ,, ,, ,,
७. महागुनस	३ मील	१४,७०० ,, ,, ,,
८. पंचतरणी	५ मील	१२,००० ,, ,, ,,
९. अमरनाथ	४ मील	१२,७२९ ,, ,, ,,
श्रीनगर से अमरनाथ	८७ मील	
पहलगाम से अमरनाथ	२८ मील	

सूचना-केन्द्र

१. विज़िटर्स ब्यूरो, जम्मू एण्ड काश्मीर गवर्नमेंट,
रेजीडेंसी रोड,
श्रीनगर

२. दी गवर्नमेंट ऑव इंडिया टूरिस्ट इन्फार्मेशन आफिस,
रेजीडेंसी रोड,
श्रीनगर

३. रीजनल टूरिस्ट आफीसर
टर्मीनस विक्टोरिया,
बंबई

४. रीजनल टूरिस्ट आफीसर
एस्प्लेनेड मैंशन,
१४-१६, गवर्नमेंट प्लेस,
कलकत्ता

५. रीजनल टूरिस्ट आफीसर,
८८, क्वीन्सवे,
नई दिल्ली

६. रीजनल टूरिस्ट आफीसर,
१८ए, माउंट रोड,
मद्रास

७. टूरिस्ट रिसेप्शन आफीसर,
गवर्नमेण्ट ऑव इंडिया, टूरिस्ट आफिस,
बंड, श्रीनगर

८. टूरिस्ट इन्फार्मेशन आफीसर,
माल रोड, आगरा

९. टूरिस्ट इंफार्मेशन आफीसर,
१५ बी, माल,
बनारस कैंट

●
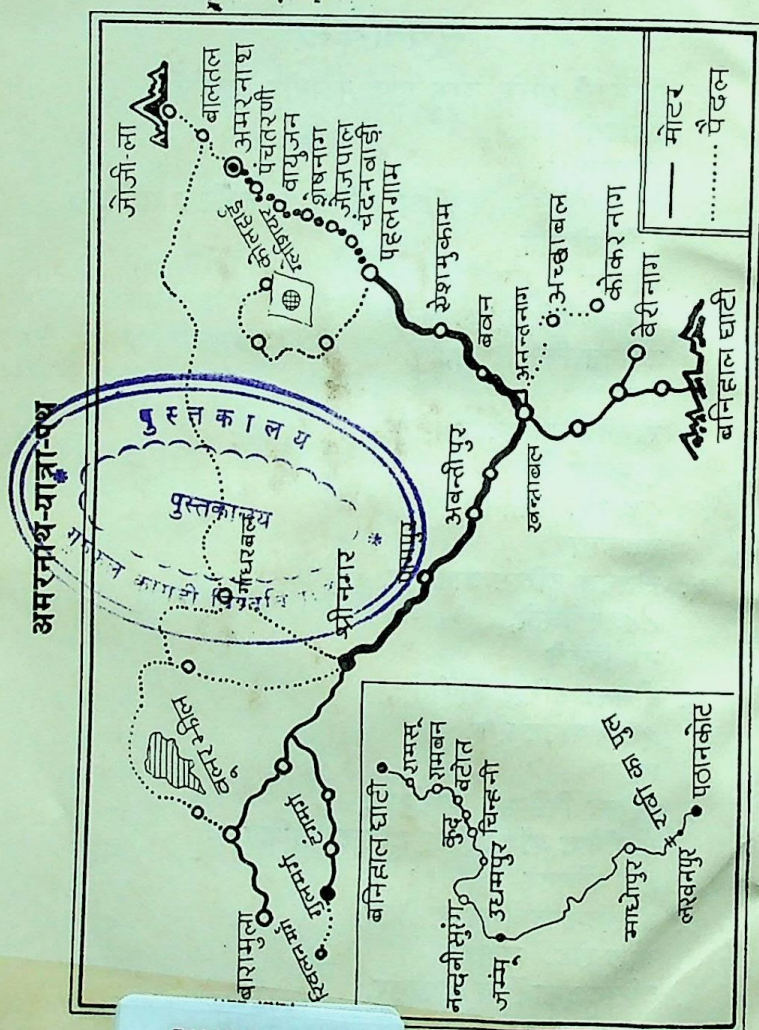
'मंडल' का यात्रा व संस्मरणात्मक साहित्य

१. हिमालय की गोद में

२. बद्रीनाथ

३. जय अमरनाथ

४. द्वारका

५. राजनीति से दूर

६. अमिट रेखाएं

७. मानवता के झरने

८. मैं भूल नहीं सकता